कुमारी
नये भारत की
उदय बेला थी

मेरे परमपूज्य पिता

महात्मा मुन्शीरामजी

गुरुकुल कांगड़ी स्थापित करने के बांद उन्होंने घर छोड़ दिया और सन्यास लेने के बाद स्वामी श्रद्धानन्द बनकर धर्म और देश के लिये प्राणों की आहुति देदी।

वह नये युग का उषाकाल था

मेरे संस्मरण

वेदकुमारी

[पुत्री महात्मा मुंशीरामजी : स्वामी श्रद्धानन्दजी]

प्रकाशक :

सत्यपाल थापर, कलकत्ता

प्राप्ति-स्थान :

१. हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय
बम्बई - ४

२. सत्यपाल थापर
११, मिडलटन रोड, कलकत्ता

प्रथम संस्करण : मार्च १९६६

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :

संकटा प्रसाद शुक्ल
शुक्ल प्रिंटर्स
सिक्का नगर, बम्बई ४

दो शब्द

वेदकुमारी

मैं लेखिका नहीं हूँ। फिर भी मैंने इन पृष्ठों में अपने जीवन की कुछ बीती बातें लिखने का साहस इसलिए किया कि इन बातों में उस युग की एक झलक मिलती है, जिसे देश के नवनिर्माण का प्रभात कहा जा सकता है।

उन दिनों आर्य-समाज देश की प्रगति का प्रतीक माना जाता था और मेरे पूज्य पिता महात्मा मुंशीरामजी (जो बाद में संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द नाम से विख्यात हुए) आर्य समाज के नेता थे। महर्षि दयानन्द के धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदर्शों को देश और जाति के जीवन में ढालना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। इस काम में उन्हें जिन संघर्षों में से गुजरना पड़ा था, उसकी कुछ बातें मुझे याद आ रही थीं। वे बातें मेरे बचपन की थीं। मगर, सुधार - युग की पहली पहली बातें होने के कारण उनका ऐतिहासिक महत्व भी हो जाता है।

बाद में महात्मा गांधी के सत्याग्रह - आन्दोलन में भी मैंने अपनी शक्ति के अनुसार योग दिया। उन दिनों की छोटी - छोटी घटनाओं से ही आज का भारत बना है। मेरे संस्मरण तो अपने ही जीवन के हैं, किन्तु उनमें भी उस समय के राष्ट्रीय जीवन की एक झलक है। इसीलिए मैंने उन्हें अपनी सरल - सीधी भाषा में लिख दिया है।

पिछले १० - १२ वर्षों से मेरा अधिक समय शैया पर ही बीतता है। शरीर बाहर आने - जाने के अयोग्य हो गया है; किन्तु आंखें मेरा साथ दे रही हैं। पढ़ने और बीती बातें सुनाने में ही ज्यादा समय बीतता है।

सुननेवालों में से कई लोगों ने आग्रह किया कि इन बीती बातों को पुस्तक रूप में छापकर स्थायी कर दिया जाये। अधिक विस्तार न करके, मैंने थोड़े ही शब्दों में अपने संस्मरण लिख दिये।

मेरी आयु इस समय ८० से ऊपर है। पिताजी ने तो १९२६ में प्राणों की आहुति दे दी थी। बड़ा भाई हरिश्चन्द्र १९१२ में यूरोप जाकर वापस न आया। छोटा भाई इन्द्र भी १९६० में स्वर्गवासी हो गया। मेरे पूज्य पति लाला धनीरामजी १९४५ में ही दिवंगत हो गये थे। सन्तानों में से बड़ी लड़की सत्यवती और उषा प्रभु को प्यारी हो चुकीं। दो लड़कियां कौशल्या और स्वर्णलता अपने घरों में हैं। लड़कों में बड़ा सत्यकाम बम्बई में 'नवनीत' का संपादक है, छोटा सत्यपाल कलकत्ता में व्यापार करता है। .... ईश्वर इन सबको चिरायु करे। ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि मेरे बच्चे अपने - अपने कार्यक्षेत्र में अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं।

इन संस्मरणों में जो 'मैं' की झलक आ गयी है— उसके लिए मुझे दुःख है। संस्मरण शैली में घटनाओं के उल्लेख से ही ऐसा हुआ। अन्यथा मैं जानती हूं कि मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसका बखान अहंभावना के साथ हो सके।

— वेदकुमारी

आज से लगभग ८२ वर्ष पूर्व मेरा जन्म १८८२ में जालन्धर जिले के तलवन नामक कस्बे में हुआ था। तब तक मेरे पूज्य पिता, जो बाद में महात्मा मुन्शीरामजी और पीछे श्रीस्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए, अपने शहर में ही नहीं सारे पंजाब में अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। पंजाब में आर्य-समाज का आन्दोलन उन दिनों जोर पकड़ रहा था और पिताजी की गणना इस संस्था के अग्रणी नेताओं में थी।

मुझे याद है पिताजी बहुत व्यस्त रहते थे। आर्य-समाज के संगठन तथा प्रचार-कार्य से उन्हें कभी-कभी ही फुर्सत मिलती थी। घर में संध्या–हवन के समय मुझे साथ बैठाना वे कभी न भूलते थे। बहुत समय तक घर में मैं अकेली रही हूंगी। क्योंकि मैं ही उनकी सबसे ज्येष्ठ सन्तान थी। दूसरी बहन के जन्म के समय मैं ढाई वर्ष की हो चुकी थी। अपने दोनों भाइयों के जन्म मुझे आज भी याद हैं। मेरे भाई हरिश्चन्द्र का जन्म १८८७ में हुआ था। जब मैं ५ वर्ष की थी। पिताजी उसके जन्म के दिन भी घर पर नहीं थे। मुझे स्मरण है, जब वह घर लौटकर आये थे तो घर में खूब धूमधाम हुई थी। मिठाइयों के अम्बार लग गये थे और बधाई देने वालों का तांता लगा हुआ था। मेरे दूसरे भाई इन्द्र जो बाद में प्रो०

इन्द्र विद्यावाचस्पति के नाम से यशस्वी हुए—का जन्म १८८९ में हुआ था। यह वही वर्ष था जब जवाहरलालजी का जन्म हुआ था। मेरे पिता उस जमाने में पंडित मोतीलाल नेहरू के मित्रों में थे; दोनों सहपाठी भी रह चुके थे।

आज, जब मैं ये पंक्तियां लिखने बैठी हूं, मेरी छोटी बहन और मेरे दोनों छोटे भाइयों का देहावसान हो चुका है। अपने बचपन की धुंधली-सी याद करते हुए अपने बहन-भाइयों के चेहरे और उनमें भी विशेषतः इन्द्र की याद मेरी आंखों के आगे चित्रवत् आ जाती है। इन अस्सी वर्षों में दुनियां कितनी बदल चुकी है। जब मैं अपने बचपन के जमाने को याद करती हूं, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह किसी और ही दुनिया की याद हो। उस जमाने का कुछ भी तो आज उसी रूप में नहीं रहा। हां, आज सभी दिशाओं में जितनी उन्नति हुई है, उसका बीज मेरे बचपन के दिनों में जरूर बोया जा रहा था। पिताजी का ध्यान सामाजिक उन्नति में हर घड़ी लगा रहता था।

बाबाजी की गोद और मीठी रेवड़ियां

किन्तु अपने बचपन की मेरी सबसे पहली याद अपने दादाजी की है, जिन्हें अपने बचपन में मैं 'बाबा' बुलाया करती थी। मेरे पिताजी उनकी सबसे छोटी संतान थे और मैं अपने पिता की सबसे बड़ी संतान। बाबाजी का मुझ पर अपार स्नेह था। मेरी दादी का देहावसान मेरे जन्म से पूर्व ही हो चुका था, इससे घर की पूरी देखभाल मेरी बड़ी ताई करती थी। 'बाबा' जब भोजन के लिए बैठते थे तो मुझे अपनी गोद में बैठा लेते। एक छोटा-सा ग्रास वह मुझे देते और उसके बाद एक बड़ा ग्रास स्वयं खाते। मैं आश्चर्य से देखती कि वह इतना बड़ा ग्रास एक ही बार में कैसे खा जाते हैं। यही रोज

का सिलसिला था। मुझे गोद में लिये बिना बाबाजी भोजन कर ही नहीं सकते थे। थाल लगा दिये जाने के बाद जब बाबाजी की पुकार होती तो वे खड़े होकर सबसे पहले मुझे तलाश करते और मैं भी एक कोने में दुबकी रहकर इस पुकार की प्रतीक्षा किया करती।

घर में और भी बहुत से बच्चे थे। पिताजी के बड़े भाइयों की कई सन्तानें थीं। ताई ही घर की देखभाल करती थी। उनकी भी लगभग मेरी ही उम्र की एक लड़की थीं। सदा के समान एक दिन बाबाजी मुझे अपनी गोद में लेकर खाना खिला रहे थे कि गुस्से में भरी ताईजी उनके पास आयीं और आते ही उन्होंने मुझे एक झटके से बाबाजी की गोद से छीन कर एक तरफ डाल दिया और कहा, "घर भर में सिर्फ यही एक लड़की रह गई है क्या ? जब देखो, तब इसे ही गोद में लिए रहते हैं।

मेरे बाबाजी 'राम राम' करते हुए खाने का भरा पूरा थाल छोड़कर उठ खड़े हुए। उस दिन उनसे भोजन नहीं किया गया। अपनी बहू से उन्होंने कुछ नहीं कहा। घर भर में बाबाजी का इतना सम्मान और रोब था कि यदि वह इस घटना की झलक भी किसी को देते तो ताईजी की आफत आ जाती। पर उन्होंने किसी से कुछ भी नहीं कहा। केवल उस दिन भोजन नहीं किया।

दूसरे दिन जब बाबाजी के लिए थाल सजाकर उनको भोजन के लिए पुकार की गयी तो एक बार तो उन्होंने वहां आकर खाने से इन्कार कर दिया।

बाबाजी का वह प्यार मुझे कभी नहीं भूलता। घर के निकट ही बाबाजी ने अपने खर्च से एक ठाकुरद्वारा बनवाया था, जिसमें राम और कृष्ण की मूर्तियां थीं। मेरे बाबाजी उसी ठाकरद्वारे के पासवाले कमरे में रहते थे। उन्होंने कह दिया कि उनका भोजन

उनके कमरे में ही भेज दिया जाया करे। पहले ही रोज जब बाबाजी के भोजन का थाल उनके कमरे में पहुंचा, मैं वहां मौजूद थी और मुझे गोद में बैठाकर ही उन्होंने भोजन किया। उसके बाद तो वे मेरे लिए एक छोटी थाली और कई छोटी-छोटी कटोरियां भी खरीद लाये और मैं बाबाजी के साथ बैठकर अपनी थाली में भोजन करने लगी। भोजन के बाद बाबाजी रेबड़ियां या कोई और मीठा पदार्थ भी मुझे खाने के लिए देते थे। वैसी मींठी रेवड़ियां मैंने शायद कभी नहीं खायीं होंगी।

बाबाजी राम और कृष्ण के परमभक्त थे। इधर मेरे पिताजी कट्टर आर्य-समाजी थे। पर दोनों में इस विषय पर कभी विवाद नहीं हुआ। दोनों में पूरा समझौता था। कि वे बहस नहीं करेंगे। पिताजी यों आये-गये सभी लोगों को आर्य-समाज की शिक्षाएं देते, पर बाबाजी और उनमें कभी खण्डन-मण्डन का चर्चा न होता। बाबाजी बनारस और लखनऊ के बड़े कोतवाल रह चुके थे। मैंने सुना था कि जहां-जहां वे रहे थे, उनका खूब आदर और बहुत रोब-दाब रहा था। फिर भी उन्होंने अपने पुत्र पर वैसा रोब जमाने की कोशिश कभी नहीं की थी।

हम सब जालन्धर रहते थे। मेरे पिताजी वकील थे। वकालत के लिए वे जालन्धर में रहते थे। मेरा बचपन भी जालन्धर में ही बीता। पिताजी ने वहां बहुत बड़ा घर बनाया था। मुझे उसकी चप्पा-चप्पा जगह याद है। एक बड़े सेहन के चारों ओर न जाने कितने कमरों की पंक्तियां थीं। एक एक पंक्ति में कम से-कम ५ बड़े-बड़े कमरे जरूर होंगे। कमरों की जो पंक्तियां सड़क की ओर थीं, उसके दोनों ओर दो ऊंचे बुर्ज भी थे। घर में बड़े ढंग से सजी हुई कितनी ही बैठकें भी थीं। मेहमानों के लिए अलग कई कमरे भी थे। वे सब मुझे आज भी याद हैं।

मेरी शिक्षा का प्रश्न : कन्या महाविद्यालय का आरंभ :

मैं जब ५ वर्ष की हो गयीं तो पिताजी के सामने मेरी शिक्षा का प्रश्न आया। उस जमाने में हिन्दू और मुसलमान घरों में 'स्त्री शूद्रौ· नाधीयाताम्' (स्त्री और शूद्र को पढ़ाना नहीं चाहिए) पर पूरी तरह अमल किया जाता था। परिणाम यह था कि जालन्धर जैसे महत्वपूर्ण नगर में लड़कियों को पढ़ाने के लिए एक भी स्कूल नहीं था। सिर्फ एक अपवाद था। वह यह कि ईसाई मिशनवालों ने वहां एक छोटा-सा बालिका विद्यालय जरूर चला रखा था। इसमें सिर्फ एक बूढ़ी ईसाई महिला पढ़ाया करती थी। मुझे अक्षर ज्ञान तो पिताजी ने स्वयं करवा दिया था, पर जब बाकायदा पढ़ाई का सवाल आया तो मुझे भी ईसाइयों के मिशन स्कूल में भर्ती करवाने के अतिरिक्त उन्हें कोई चारा नहीं दिखायीं दिया।

नया स्कूल और उसकी नयी अध्यापिका :

मेरी शिक्षा मिशन स्कूल में चलने लगी। हिन्दी और साथ-ही-साथ अंग्रेजी का भी अक्षर-ज्ञान मुझे करवाया जाने लगा। अभी मुझे स्कूल में पढ़ते हुए बहुत समय नहीं हुआ था कि आर्य-समाज के एक प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी पूर्णानन्द हमारे घर आकर ठहरे। यों आर्य-समाज के सभी नेता और प्रचारक हमारे ही घर ठहरा करते थे। पर उक्त स्वामीजी पिताजी के मित्रों में थे। सांझ को मैं स्कूल से वापस आयी तो स्वामी पूर्णानन्दजी ने मुझे अपने पास बुला लिया। इधर-उधर की कुछ बातों के बाद स्वामीजी ने पूछा, तुम्हारे स्कूल में गाना भी सिखाया जाता है।

'जी हां।'

मेरी शिक्षा का प्रश्न : कन्या महाविद्यालय का आरंभ :

मैं जब ५ वर्ष की हो गयीं तो पिताजी के सामने मेरी शिक्षा का प्रश्न आया। उस जमाने में हिन्दू और मुसलमान घरों में 'स्त्री शूद्रौ· नाधीयाताम्' (स्त्री और शूद्र को पढ़ाना नहीं चाहिए) पर पूरी तरह अमल किया जाता था। परिणाम यह था कि जालन्धर जैसे महत्वपूर्ण नगर में लड़कियों को पढ़ाने के लिए एक भी स्कूल नहीं था। सिर्फ एक अपवाद था। वह यह कि ईसाई मिशनवालों ने वहां एक छोटा-सा बालिका विद्यालय जरूर चला रखा था। इसमें सिर्फ एक बूढ़ी ईसाई महिला पढ़ाया करती थी। मुझे अक्षर ज्ञान तो पिताजी ने स्वयं करवा दिया था, पर जब बाकायदा पढ़ाई का सवाल आया तो मुझे भी ईसाइयों के मिशन स्कूल में भर्ती करवाने के अतिरिक्त उन्हें कोई चारा नहीं दिखायीं दिया।

नया स्कूल और उसकी नयी अध्यापिका :

मेरी शिक्षा मिशन स्कूल में चलने लगी। हिन्दी और साथ-ही-साथ अंग्रेजी का भी अक्षर-ज्ञान मुझे करवाया जाने लगा। अभी मुझे स्कूल में पढ़ते हुए बहुत समय नहीं हुआ था कि आर्य·समाज के एक प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी पूर्णानन्द हमारे घर आकर ठहरे। यों आर्य-समाज के सभी नेता और प्रचारक हमारे ही घर ठहरा करते थे। पर उक्त स्वामीजी पिताजी के मित्रों में थे। सांझ को मैं स्कूल से वापस आयी तो स्वामी पूर्णानन्दजी ने मुझे अपने पास बुला लिया। इधर-उधर की कुछ बातों के बाद स्वामीजी ने पूछा, तुम्हारे स्कूल में गाना भी सिखाया जाता है।

'जी हां।'

'तो कुछ गाकर सुनाओ।'

मैं मिनिट-भर झिझकी तो पिताजी ने कहा,–'बेटी, एक गाना सुना दो।'

पिताजी की आज्ञा मेरे लिए ब्रह्मवाक्य थी। मैं तनकर खड़ी हो गयी और दोनों हाथ प्रार्थना के रूप में ऊपर उठाकर गाने लगी, 'ईसा मसैहा, मेरे प्राण रखैया।'

और मैंने देखा कि पिताजी और स्वामी पूर्णानन्दजी दोनों मेरे गाने के शब्द सुनकर एकदम गम्भीर हो गये हैं। मैं भी एकाएक घबरा गयी। मैंने गाना बन्द कर दिया। पहले तो मैं समझी थी कि मुझे गाने पर शाबाशी मिलेगी। गाते-गाते मेरे एकाएक चुप हो जाने पर भी दोनों में से किसी ने मुझसे यह नहीं कहा कि मैं गाना पूरा करूं। कुछ देर की चुप्पी के बाद पिताजी ने बड़ी गंभीरता से मुझे कहा–'अपने कमरे में जा सकती हो।'

अगले दिन ही प्रातः पिताजी ने मेरी माताजी से कह दिया–'वेदकुमारी को आज से स्कूल मत भेजो। मैंने उसका नाम स्कूल के रजिस्टर से कटवा दिया है।'

कुछ दिनों में ही पिताजी ने यह निश्चय कर लिया कि वह स्वयं जालन्धर में कन्याओं के लिए एक पाठशाला चलाने की व्यवस्था करेंगे। मुहल्ले ही में एक कमरे का प्रबन्ध तो उन्होंने उसी दिन कर दिया, पर असली समस्या आई, कोई अध्यापिका तलाश करने के सम्बन्ध में। कई दिनों की मेहनत के बावजूद कोई पढ़ी लिखी नारी ऐसी न मिली, जो कन्या पाठशाला में पढ़ाने को तैयार हो। अंत में लाचार होकर पिताजी ने यही निश्चय किया कि आर्य-समाज के वृद्ध पुरोहित पंडित श्रीपति इस कन्या पाठशाला में पढ़ाया करें। मुझे याद है कि इस परिवर्तन में कई दिनों तक मेरा स्कूल जाना बन्द रहा था।

मेरे साथ ६ और कन्यायें भी इस नयी पाठशाला में प्रविष्ट हुईं। जालन्धर में यह पहली गैर-ईसाई बालिका पाठशाला थी। इन सात कन्याओं में हम दोनों बहनें और मेरे मामा की एक लड़की, ये तीन तो एक ही परिवार की थीं। किसी तरह यह पाठशाला चल निकली। कुछ ही दिनों के बाद शहर में यह आन्दोलन उठ खड़ा हुआ कि लड़कियों को मर्द पढ़ा रहा है। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि हमारे परिवार से बाहर की चारों लड़कियां पाठशाला से निकाल ली गयीं। वृद्ध पंडितजी को इस आन्दोलन से इतना दुःख हुआ कि उन्होंने पढ़ाने से ही इन्कार कर दिया। यह पाठशाला कुछ दिनों के लिए आपसे आप बन्द हो गयी।

अब पिताजी ने एक स्त्री अध्यापिका तलाश करने की जी-तोड़ कोशिश की। बड़ी मेहनत के बाद अमृतसर से १८ वर्ष की एक मिडिल पास लड़की इस पाठशाला में अध्यापिका बनकर आने को तैयार हुई। इस बात पर जालन्धर में खुशी की लहर फैल गयी। पाठशाला में अब और भी बहुत-सी नयी लड़कियां भी दाखिल हो गयीं। मुझे आज भी याद है कि हमारी वह अध्यापिका लहंगा पहनकर दुपट्टा ओढ़े पाठशाला में आया करती थीं। मुझ पर उनका बहुत स्नेह था। ७२ वर्ष पहले की वह छोटी-सी पाठशाला आज कन्या महाविद्यालय जालन्धर की प्रसिद्ध संस्था के रूप में विद्यमान है, जिसकी जयन्ती की अध्यक्षता गत वर्ष भारत के राष्ट्रपति ने की थी।

मां का वियोग

अपनी मां की याद मुझे धुंधली सी है। पिताजी घर से प्रायः बाहर रहा करते थे। आर्य-समाज उन दिनों एक नन्हें पौधे के रूप में था। आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के

देहावसान के समय मैं दो वर्ष की बच्ची रही हूंगी। मेरे पिताजी उनसे एक ही मुलाकात में इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपने समय का बड़ा भाग आर्य-समाज के संगठन में लगाने की ठान ली थी, पर माताजी पर इससे भारी बोझ आ पड़ा।

मेरी मां पूज्य शिवदेवीजी सात भाइयों की अकेली बहन थीं। उनके सभी भाई उन्हें बहुत अधिक स्नेह करते थे। उनका परिवार जालन्धर का प्रमुख परिवार था और उनके भाई पंजाब के प्रमुख व्यक्तियों में थे। माताजी के सबसे छोटे भाई श्रीहंसराज सोंधी, जो वर्षों तक भारतीय पार्लियामेंट के सबसे पुराने सदस्य रहे—का देहांत गत वर्ष ही हुआ है। वह बड़े लाड-प्यारों में पली थीं। वह अत्यंत सहिष्णु और शांत स्वभाव की थीं। पूज्य पिताजी के कामों में दिलचस्पी न होते हुए भी उन्होंने कभी असहमति प्रगट नहीं कीं।

१८९१ के अगस्त मास में मेरी मां आसन्न प्रसवा हुई। उन्होंने एक कन्या को जन्म दिया। वह जीवित नहीं रह सकी। माताजी भी बीमार पड़ गयीं। पिताजी ने उनकी चिकित्सा करवाने में कोई कसर नहीं रख छोड़ी। उन दिनों वे जालन्धर से बाहर भी नहीं गए। मां बहुत कमजोर हो गई थीं और उन्हें प्रति-दिन बुखार आता था। उन दिनों आज के युग की रोग-निरोधक शक्तिशाली दवाइयों का आविष्कार नहीं हुआ था। ३० अगस्त की रात को पिताजी आर्य-समाज की किसी बैठक में गये हुये थे कि माताजी ने मुझे कागज और कलम दावात लाने को कहा। भाई-बहन सब सोये हुए थे। माँ की तबीयत दिनभर खराब थी, पर शाम को वह कुछ ठहरी हुई प्रतीत हो रही थी। मैं देख रही थी कि वे बड़े कष्ट से कुछ लिख रही हैं। चिट्ठी लिखकर माँ ने मुझे दी और कहा कि मैं वह दूसरे दिन पिताजी को दे दूं। उसके बाद उन्होंने मुझे प्यार किया और कहा कि मैं भी सो जाऊं।

उसी रात माँ की तबीयत बहुत खराब हो गयी। रात के १ बजे डाक्टर को बुलाया गया। पिताजी सारी रात माँ की सेवा करते रहे।

३१ अगस्त की सुबह हम लोग उठे तो पाया कि माँ हमें छोड़कर सदा के लिए चली गयी थीं। मुझे कहां मालूम था कि रात का प्यार मेरे लिए माँ का अन्तिम प्यार होगा। माँ के बड़े भाई और मेरी नानी भी उस रात वहीं थे। सुना कि मां को मेरे बड़े मामा लाला देवराजजी ने ईश्वरभक्ति का एक गाना भी उनके अंतिम क्षणों में सुनाया था। प्रातः ५ बजे मेरी माँ ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं। उनकी नब्ज उस वक्त मेरे पिताजी के हाथों में थी और उनका मुख अपनी माँ की गोद में छिपा था।

दिन-भर हम लोग खूब रोये। सारे दिन लोगों का तांता लगा रहा। सांझ हुई तो मैंने माँ का वह अन्तिम पत्र लाकर पिताजी को दिया। उसमें लिखा था—

"बाबूजी, अब मैं चली। मेरे अपराध क्षमा करना। आपको तो मुझसे अधिक रूपवती और समझदार सेविका मिल जायेगी, किन्तु बच्चों को मत भूलना। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें—शिवदेवी "

माँ के देहावसान से मुझे बहुत बड़ी चोट पहुंची। मैं अभी ९ बरस की थी। घर में पिताजी के बाद मैं ही उम्र में सबसे बड़ी थी। मेरे सब बहन-भाई मुझसे छोटे थे। उन्हें सान्त्वना देना मेरा कर्तव्य था। इससे खुलकर रो सकने का जैसे मुझे अवसर ही न मिला। भाई इन्द्र तो तब दो बरस का नासमझ बच्चा ही था।

मां के देहावसान के बाद मेरा सारा स्नेह और आदर पिताजी के प्रति ही केन्द्रित हो गये। यह मनोवस्था संपूर्ण जीवन काल में बनी रही। महाभारत में जहाँ पिता को परमदेव कहा है, मैं भी सदा अपने

पिता को परमदेव मानती रही। परमात्मा के बाद सबसे अधिक श्रद्धा मुझे अपने पिताजी के प्रति ही रही। मेरी माता के देह त्यागसे पिताजी को चोट तो बहुत पहुंची। पर अपनी भावुकता कभी उन्होंने दूसरों पर प्रगट नहीं होने दी। यों भी वे अत्यंत कार्यव्यस्त व्यक्ति थे। अपना मार्ग निश्चित कर अकेले उसी पर चलते जाना उसका आभास था। मां के देहान्त के बाद पिताजी के मित्रों ने उन पर बहुत जोर डाला कि वे दूसरा विवाह कर लें। लोगों की दलील थी कि बच्चों की खातिर भी उन्हें तत्काल दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। पर पिताजी ने दूसरा ही निश्चय कर लिया था। उन्होंने अपने भाई आत्माराम जी को जालंधर में बुला लिया और उनकी पत्नी, हमारी ताई ने हम चारों बच्चों को संभाल लिया। जालन्धर में हम सबको मां की याद बहुत आती थी, इससे पिताजी हरिश्चन्द्र को लेकर धर्मशाला चले गये और तीनों बहन भाई ताईजी के साथ कुछ दिनों के लिए तलवन ले जाये गये।

कुछ ही दिनों के बाद हम दोनों बड़ी बहनें जालंधर लौट आयीं! दोनों भाई अब ताईजी के पास तलवन में रहने लगे। हम दोनों बहनें नानीजी के पास रहकर पढ़ने लगीं। ननिहाल में रहते हुए मुझपर अपने बड़े मामा, लाला देवराजजी का गहरा प्रभाव पड़ा। जालंधर के कन्या महाविद्यालय की स्थापना तो पिताजी ने की थी, पर उसे पूर्णतः विकसित और भारत प्रसिद्ध संस्था बनने का श्रेय लाला देवराज जी को ही था। लाला देवराज जी के मधुर बोल मुझे कभी नहीं भूलते। वैसा देवता व्यक्ति दुनिया में शायद ही कोई हो।

विद्यार्थी काल की बातें :

मेरे विद्यार्थी जीवन की कुछ छोटी छोटी बातें आज की पृष्ठभूमि में बहुत विचित्र प्रतीत होंगी। उदाहरण के लिए : उनदिनों आमतौर से लड़कियों के बालों को गूंथ दिया जाता था। गुथे बाल सप्ताह भर तक

उसी तरह बंधे रहते थे। इससे बालों में पसीना जमा ही जाता था। और जुएं पड़ जाती थीं। इससे बचने के लिए हमारे कन्या-विद्यालय में साबुन से बाल धोकर, अच्छी तरह कंघी कर देने के बाद उन्हें खुला छोड़ दिया जाने लगा। मुझे याद है, इसी जरा-सी बात से जैसे जालन्धर भर में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। लोग कहते थे कि कन्या विद्यालय फैशन का गढ़ बन गया है। वहां लड़कियों को मेमों की तरह रहना सिखाया जाता है। हमारे अभिभावकों ने इन आलोचनाओं की कोई परवाह नहीं की। कन्या विद्यालय में हमारे कपड़े बहुत सादे, मोटे और स्वदेशी होते थे। फिर भी अलोचक चुप नहीं थे। उन्हें हमारे साफ-सुथरे कपड़ों में भी फैशन दिखायी देता था।

मुझे यह भी याद है कि आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में जब पहली बार हम लड़कियों ने सम्मिलित रूप से एक प्रार्थना-गीत गाया था, तो उससे बहुत तहलका मचा था। इन उत्सवों में स्त्रियों को पर्दे के पीछे बैठाया जाता था, और हम लोगों ने भी चिक के भीतर से ही प्रार्थना गीत गाया था। बाद में तो लड़कियों का इस तरह सहगान करना बहुत लोकप्रिय बन गया। जब हम लड़कियां चिक के पीछे से भी गाती थीं, तो कौतूहलवश उत्सव में खूब भीड़ जमा हो जाती। एकबार हमें एक प्रभावशाली कविता गाने को दी गयी। इसका आशय था आर्य भाइयो, हम कन्याओं की पुकार सुनो। आप अपने बेटे को योग्य बनाने का हर सम्भव उपाय बरतते हैं, पर अपनी बेटियों को योग्य बनाने की चिन्ता जरा भी नहीं करते। लड़का और लड़की दोनों ही आपकी संतानें हैं और परमात्मा की एक समान देन हैं।

पंजाब में स्त्रियों को शिक्षा तथा समानता देने में इस गीत ने आन्दोलन का सूत्रपात्र किया था। आज इस बात को ७० वर्ष के ऊपर हो गये हैं, मगर, मुझे उस गीत का प्रभाव कभी भूलता नहीं।

गहनों का त्याग :

मेरे मामा देवराज जी की बेटी भी कन्या महाविद्यालय में मेरे साथ पढ़ती थी। हम तीनों बहनों को वे सदा बड़े प्यार से शिक्षा दिया करते थे। ननिहाल में हम तीनों लड़कियां थीं। बड़ी लाड़ली मानी जाती, हम तीनों को सोने और चांदी के बहुत से गहने ताईजी से तथा दूसरे रिश्ते-दारों से भेंट में मिलते थे। हम इन्हें बड़े चाव से पहनती थीं। एक दिन मामा देवराज जी ने कहा, "लड़कियों का वास्तविक आभूषण तो विद्या है। सोने-चांदी के आभूषणों से लड़की की शोभा नहीं बढ़ती। कन्या तो अपने भीतर के गुणों से ही सुन्दर बनती है।"

बस, उसी रात हम तीनों बहनों ने स्वेच्छापूर्वक अपने सारे गहने उतार दिये और उनकी एक एक पोटली बनाकर नानीजी को दे दी। पहले तो नानीजी घबरायीं कि यह क्या बात हो गयी। पर जब उन्हें सारी बात ज्ञात हुई तो उन्होंने भी हमारे इस कार्य की खूब प्रशंसा की और हमें इस त्याग पर बधाई दी। शायद उसी बात का प्रभाव है कि गहनों की चाह मुझे जीवन भर कभी नहीं हुई।

× × × ×

अब मैं ११ वर्ष की हो गई, तब हम चारों भाई बहन पिताजी के पास एक साथ रहते थे। पिताजी के मित्र की एक कन्या भी हमारे साथ थी और ताईजी हम पांचों की देखभाल करती थीं। पिताजी तब हम लोगों के रहन-सहन में काफी दिलचस्पी लेते थे। पढ़ाई के साथ व्यायाम भी नियमित रूप से चलता था। पिताजी को क्रिकेट का शौक था। हमारी कोठी के बड़े सहन में क्रिकेट का खेल खूब जमता था। हम पांचों भाई-बहनों के अतिरिक्त आस-पास के बच्चे भी एकत्र हो जाते। पिताजी हमें क्रिकेट खेलना सिखाया करते थे। कभी-कभी वे स्वयं बालिंग भी करते थे। पिताजी की छत्रछाया में मेरे जीवन के वे दिन बहुत ही सुख से बीते। सावन के महीने में हमारी कोठी के

आंगन में झूले डाल दिये जाते थे और पिताजी स्वयं हमें झूला झुलाया करते थे। वर्षा के समय झूलने के लिए हमारी कोठी के चौड़े बरामदों में भी झूले डाल दिये जाते थे। यों साधारणतः देखने पर पिताजी बहुत गंभीर रहते हैं, पर हम लोगों के पास आते ही वे वात्सल्य से मुस्कराने लगते। मैं सदा यही अनुभव करती थी कि हम मातृविहीन बच्चों के लिए पिताजी अपना स्वभाव तक बदलने का प्रयत्न करते हैं। रक्षा-बंधन के दिन वे राखियां मंगवाते और हम दोनों बहनों से अपने दोनों छोटे भाइयों को राखी बंधवाते। भैयादूज के दिन वे स्वयं केसर निकालते और हम दोनों से भाइयों को टीका लगाने को कहते।

घर के सभी तरह के काम–काज हम दोनों बहनें करती थीं। प्रतिदिन प्रातःकाल सारा परिवार एक साथ संध्या और हवन करता था। इसका पूरा प्रबंध भी हम दोनों बहनों के जिम्मे था। पिताजी स्वयं मुझे सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पढ़ाया करते थे। उनका यह ध्यान रहता था कि वेदमंत्रों का हम शुद्ध उच्चारण करें। मुझे याद है घर पर संस्कृत पढ़ाने के लिए एक पंडितजी भी आया करते थे।

पिताजी हम दोनों बहनों को आस–पास के कुत्सित वातावरण से बचाने का पूरा प्रयत्न किया करते थे। हमें पड़ोस के विवाहों में इसलिए नहीं जाने दिया जाता था कि उस जमाने में स्त्रियां गालियां गाया करती थीं। जालंधर में तीजों का त्योहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। शहर के एक स्थान पर सैकड़ों-हजारों स्त्रियां एकत्र होती थीं। एक बड़ा मेला लग जाता था, इस मेले में जाने की इच्छा मेरे दिल में भी हुई। एक सहेली मेले से होकर आ रही थी। उसने मुझे वहां चलने के लिये निमंत्रित किया। मैंने कहा– " मेले में नहीं जाऊंगी। "

"क्यों ?"

"पिताजी नाराज होंगे।"

"उन्हें कौन बताने जा रहा है। वे तो सांझ को ही घर लौटते हैं। उससे पहले हम वापस आ जायेंगे।" सहेली ने मुझे अपने साथ चलने को तैयार कर लिया।

मैं मेले में गयी। वहां मेरा मन निरंतर घबराहट से भरा रहा। थोड़ी ही देर के बाद अपनी सहेली को छोड़कर अकेली घर लौट आयी। मेरा मन मुझे धिक्कार रहा था, क्योंकि पिताजी से आज्ञा लिये बिना मैं पहली बार कहीं बाहर गयी थी। सदा के समान पिताजी वक्त पर घर आये। रात के भोजन के समय पिताजी ने मुस्कराते हुए मुझसे कहा, "वेद बेटी, तू आज तीजों का मेला देख आयी न ? बता तूने वहां क्या-क्या देखा, सुना ?।"

मैं सचमुच पानी-पानी हो गयी। हालांकि पिताजी ने अपने स्वर में जरा भी नाराजगी जाहिर नहीं की थी, मगर उनका प्रश्न ही मुझे लज्जित करने को काफी था। उसके बाद मैंने फिर कभी कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसमें उनकी अनुमति न हो।

× × × ×

समाज के साप्ताहिक सत्संगों में पिताजी हमे भी ले जाया करते थे। समाजों के साप्ताहिक सत्संगों में भजन बोलनेवाले जैसे आजकल भजनीक मिल जाते हैं, वैसे उस जमाने में नहीं मिलते थे। आर्य सभासद ही मिलकर भजन गाया करते थे। पिताजी का भी स्वर बहुत मीठा था। वे स्वयं भजन गाते थे। नबीबख्श नामक एक मुसलमान तबला बजाया करता था।

उन दिनों बाहर से आए हुए बहुत से आर्य समाजी मेहमान उत्सव के दिनों हमारे घर पर ही ठहरते थे। हमारे लिए यही सबसे बड़ा त्यौहार होता था। उत्सव के दूसरे दिन जब आर्य स्त्री समाज का जलसा मनाया जाता था, तब वेद प्रचार के लिए हम भी भजन आदि गाने में योग दिया करती थीं।

आर्य स्त्री समाज में उन दिनों कोई विदुषी महिला नहीं थी, जो व्याख्यान देती। इसलिए वह कार्य पाठशाला के कन्याओं को ही सौंपा जाता था। कन्याएं कुछ भजन सुनाती। मैं और मेरा कुछ सहपाठिनियां छोटे छोटे निबंध लिखकर भी सुनाया करती थीं।

कभी कभी हमें आर्य-मन्तव्यों के संबन्ध में किये गये प्रश्नों का उत्तर भी देना पड़ता था। एक बार रोपड़ में आर्य समाज का वार्षिक उत्सव हो चुकने के बाद स्त्रियों का जलसा हो रहा था, उसमें एक पौराणिक विचारों वाली आर्य देवी सभा में खड़ी होकर कहने लगी कि "मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहती हूं। यदि मेरे प्रश्नों का सही सही उत्तर न मिला तो आर्य समाज का बहिष्कार कर दूंगी" रोपड़ समाज के प्रधान सोमनाथजी की माता जी उसी सभा में उपस्थित थीं। शंका–समाधान की बात सुनकर वह बड़ी चिन्ता में पड़ गयीं और मेरे पास आकर बोलीं, "अब लाज किस तरह बचेगी ! आर्य महिलाओं में से कौन ऐसी है जो शंका समाधान कर सकती है।

कन्याओं में से बड़ी श्रेणी की कन्या एकमात्र मैं ही थी। इसलिए उनका मुझे ही शंका समाधान के लिए प्रेरित करना स्वाभाविक ही था। मेरे समाधान रूप में कहे गये वाक्यों से उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। उससे मुझे जो आनन्द मिला था, वह आज भी याद है।

सोमनाथजी की माता का बलिदान :

एकबार सोमनाथजी की माता बीमार पड़ी। गांव के कट्टरपंथी लोगों ने सोमनाथजी के सुधार कार्य के विरोध में उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया। यहां तक कि उनके घर मेहरा पानी न भरता, भंगी सफाई न करता, और दुकानदार सौदा भी न देता। सोमनाथजी चिकित्सक के आदेशानुसार बीमार माता को अच्छा जल भी न पिला पाते। इन सब बाधाओं से सोमनाथजी का मन विचलित हो उठा और माता के जीवन

की रक्षा करने के विचार से उन्होंने उन कट्टर पंथियों के सामने झुक जाना चाहा। लेकिन जब उनकी माताजी को सोमनाथजी के विचार का पता लगा तो उन्होंने अपने पुत्र को यह कहकर रोक दिया कि "सोम-नाथ, तुझे अपने धर्म से नहीं डिगना चाहिये, मेरा जीवन तो और थोड़े दिन का है।" माताजी की बात सुनकर सोमनाथजी ने अपना विचार बदल लिया।

कट्टर पंथियों द्वारा सोमनाथजी के बहिष्कार का कारण यह था कि सोमनाथजी ने रहतिया चमारों की शुद्धि करके उन्हें भी आर्य बनाया था। आखिर शुद्ध जल न मिलने से सोमनाथजी की माता की मृत्यु हो ही गयी।

लेखरामजी की पत्नी का बलिदान :

उन दिनों सुधार कार्यों में बलिदान की देने परम्परा आर्यों ने अपनी खुशी से अपनायी थी। आर्य समाज के महोपदेशक पं० लेखरामजी जी प्रायः शुद्धि का ही अधिक काम करते थे। उनकी हत्या लाहौर में एक मुसलमान ने कर दी थी। उसदिन पिताजी भी लाहौर में ही थे। हम सब उनके लिए भी बहुत चिन्तातुर हो गये। पिताजी नित्य ही प्रातः चार बजे भ्रमण के लिए जाते थे इसलिए सबको भय रहता था कि पता नहीं कब कोई मुसलमान हमला कर बैठे। अतः रक्षा के लिये उनके पीछे किसी को भेजे जाने का निश्चय हुआ। बात जब पिताजी को पता लगी तो वह बहुत नाराज हुए। कहने लगे 'मुझे ईश्वर पर विश्वास है। जब तक मेरी मृत्यु की घड़ी नहीं आती तब तक मुझे कोई नहीं मार सकता।" वे शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं।

पिताजी के पास धमकी के पत्र भी आते थे। उनमें लिखा होता था; यदि तुमने शुद्धि का काम नहीं छोड़ा तो तुम्हें भी मार दिया जायेगा। एक पत्र आया, जिसमें साफ ही लिखा था "ईद के दिन तुम्हें कतल कर दिया जायेगा" हम सबको इसका पता लग गया, बड़ी चिंता हो

गई। तायाजी ने ईद के दिन नौकरों को कहा—"आज कोठी का बड़ा फाटक बन्द रखना। किसी को अन्दर नहीं आने देना।" कुछ देर बाद जब पिताजी बाहर जाने के लिए निकले तो देखा, फाटक अन्दर से बन्द है। नौकरों से पूछा तो उन लोगों ने कहा—"बड़े लालाजी ने कहा है कि आज किसी अजनबी को अंदर नहीं आने देना, पिताजी ने तायाजी से पूछा—"भाइयाजी आपने ऐसा किसलिए किया।" उन्होंने पत्रवाली बात बता दी। पिताजी ने पूछा—"आप मुझे कैदी बनाना चाहते हैं। क्या ईश्वर में विश्वास नहीं है आपका?" इस प्रश्न के बाद घरवालों ने दरवाजे खोल दिये और फिर कभी पिताजी के लिये पहरा रखने की चेष्टा नहीं की।

पं० लेखरामजी की मृत्यु के बाद उनकी स्त्री लक्ष्मी अकेली रह गई। इसलिये हमने उसको अपने पास बुलाकर रखा। हम दोनों बहनें उसको बहन की तरह जानने लगी। उनका बच्चा तो पहले ही मर गया था। वे बहुत उदास रहती थीं। बोलती भी कम थीं। बाद में कुछ बीमार भी रहने लगीं। डॉक्टर का इलाज करवाया, पर ज्वर बढ़ता ही गया। मैं रात-दिन उनकी सेवा करती। पिताजी ने पं० लेखरामजी की माता को तार दे दिया। वह पेशावर में रहती थीं। जल्दी ही आ गईं। परन्तु उनके आने के तीसरे दिन लक्ष्मी की मृत्यु हो गई।

मेरा सुधारवादी विवाह :

जब मेरी आयु १४ वर्ष की हुई तो मेरी मामियां और ताइयां यह कहने लग गई कि अब यह इतना बड़ी हो गई है, इसका विवाह जल्दी करना चाहिए। मैंने जब यह बात सुनी तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। और मैं एकांत में जाकर खूब रोई। पिताजी वैदिक सिद्धांतों के अनुसार १६ वर्ष से पूर्व विवाह के पक्ष में नहीं थे। मुझे यही दुःख था कि मेरे प्यारे पिताजी को मेरे कारण ताने सुनने पड़ते थे। पिताजी के सामने तो

किसी की हिम्मत बोलने की न होती थी। पिताजी अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे। जब मैं १६ वर्ष की हुई, तभी मेरा विवाह पूर्ण वैदिक रीति के अनुसार किया गया। यह विवाह जालन्धर में पहला ही था कि जिसमें कोई पोपलीला नहीं हुई थी। न तो अश्लील गाने गाये गए और न कोई ऐसी रस्म ही की गई, जिसे अशिष्ट कहा जाये। मुझे याद है ऐसा अनोखा विवाह देखने को लोगों की इतनी भीड़ उमड़ी थी कि हमारी सब छतें स्त्रियों से भर गईं और आंगन पुरुषों से भरा हुआ था।

इस अवसर पर खाने में भी सुधार किया गया था। पंजाब में बारात के आगे जो मिठाई परोसी जाती थी, उसको मीठाभात कहते थे। गोल चक्कर में बारात बैठ जाती थी और उसके आगे मिठाई के ढेर लगा दिये जाते थे। जितना उसमें से बाराती चाहें खाते थे; बाकी का ढेर नाई उठा के ले जाता था। बाद में वह उस मिठाई को बेचता था। जूठी मिठाई बेंचना, खाना समाज और जाति के लिए हानिकारक है; यह सोचकर पिताजी ने मेरे विवाह से ही इस प्रथा को हमेशा के लिए खत्म करने का कदम उठाया। इसलिए सबसे पहले अलग-अलग वर्तनों में सब मिठाइयां परोसी गयीं। कहीं नाई नाराज न हो जायें, इसलिए जूठी मिठाइयों के बदले उसे रुपये मिले।

गुरुकुल के धन संग्रह के लिए गृह-त्याग :

मेरे दोनों भाई, हरिश्चंद्र और इंद्र, जालन्धर के हाईस्कूल में भरती किये गये थे। वहां आरम्भ में उर्दू पढ़ाई जाती थी। पिताजी को यह स्कूली वातावरण अच्छा नहीं लगता था। इसलिए उन्होंने गुरुकुल खोलने का संकल्प कर लिया था। वह अपने बच्चों को सदाचारी देखना चाहते थे। आर्य समाज की ओर से गुजरांवाला में प्रथम गुरुकुल खोला गया था। पिताजी ने उसमें दोनों भाइयों को दाखिल करा दिया। गुरुकुल स्थापना के लिए रुपया इकट्ठा करने की चिन्ता में उन दिनों पिताजी बहुत बेचैन रहते थे। उन्होंने धन-संग्रह की योजना बनायी। प्रतिज्ञा कर

ली कि जब तक गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये संग्रह न होंगे, तब तक घर नहीं लौटूंगा। धन-संग्रह के लिए लगातार यात्रा करनी पड़ी। यात्रा कष्ट से वे कई बार बीमार हुए, परन्तु अपने प्रण को नहीं छोड़ा। यात्रा के दौरान जब कभी पिताजी जालंधर आते थे तो भी आर्य-समाज मन्दिर में ही ठहरते थे। अपनी कोठी पर नहीं आते थे। हम लोग वहीं जाकर उनसे मिलते थे।

जब उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, तभी आप घर आये। अब उनके विचारों और वेश में बड़ा भारी परिवर्तन आ गया। पहले कचहरी में जाते समय पैंट, कोट, पहनते थे, अब तो खुला पाजामा, बन्द गले का कोट, और वह भी देशी मोटे कपड़े का हो गया था। अभी मेरी छोटी बहन कुमारी थी, इसलिए वह घर और धन्धा छोड़कर नहीं जा सकते थे। धन के बिना गृहस्थी कैसे चलती ? इसलिए मन न करते हुए भी उन्हें वकालत करनी पड़ी। उन्होंने सोच लिया था कि अपनी छोटी लड़की अमृतकला (मेरी छोटी बहन) का विवाह करके वे गुरुकुल स्थापना में जीवन लगा देंगे।

बहन का विवाह : जात पांत तोड़कर

मेरी बहन मुझ से दो साल छोटी थी। पिताजी ने उसका विवाह जाति-बंधन तोड़कर करने का निश्चय किया। सभी रिश्तेदार इस बात के विरुद्ध हो गये। उनका कहना था कि यदि जाति तोड़नी भी है तो किसी असाधारण धनवान से विवाह करो। विवाह से पूर्व सब सम्बन्धियों को निमंत्रण भेजे गये। परन्तु विवाह के दिन कोई भी संबंधी नहीं आये सिर्फ समाज के आर्य सदस्य ही आ गये थे। उस समय की एक बात और याद आती है। लड़की के विवाह में जो नानके जेवर-कपड़े आते हैं, वे लेने के लिए पिताजी ने इन्कार कर दिया था। सबने पिताजी को मेरे द्वारा मनाने की चेष्टा की। आखिर इस बात के लिए मैंने पिताजी

को मना लिया कि जो कुछ नानकों को देना है, वह अमृतकला को देना है। तब यह सामान ले लिया गया।

गुरुकुल प्रस्थान :

जब मेरी बहन अमृतकला का विवाह संपूर्ण हो गया, तब मैं भी और मेरी बहन भी बहुत उदास हो गई। क्योकि हमें मालूम था कि अब पिताजी घर नहीं रहेंगे। गुरुकुल खोलने की चिंता उन्हें सदा लगी रहती थी। पुत्रों को तो उन्होंने गुरुकुल गुजरांवाले भेज ही दिया था। हमें भी अब विदा हो जाना था। इन्द्र और हरिश्चन्द्र गुरुकुल के लिए घर से चले गये, और हम दोनों बहनें ससुराल चली गयीं, कोंठी खाली हो गयी। पिताजी ने कांगड़ी में गंगा के उस पार गुरुकुल की स्थापना की।

जब गुरुकुल बन गया तो वहां पहले पहल जिस-जिस सामान की आवश्यकता हुई, वह सब पिताजी ने अपनी कोठी में से दे दिया। बड़े बड़े बर्तन, अंगीठी, छोटे बर्तन, और यहां तक कि तराजू बाट जैसी छोटी-छोटी चीजें भी गुरुकुल भेज दी गयीं। इधर मुझ पर गृहस्थाश्रम चलाने का भार पड़ा। लुधियाने में रहकर गृह संबंधी सभी काम मुझको अकेले ही संभालना पड़ता था। घर में नौकर-चाकर के अतिरिक्त सास-ननद आदि कोई सहायता करनेवाला नहीं था। मेरे पूज्य पति लाला धनीरामजी वकील थे। उनको अधिक समय अपने कार्य में व्यस्त रहना पड़ता था। मेरी छः संतानें थीं। बड़े लड़के सत्यकाम को मैंने पांच वर्ष की आयु से पहले ही गुरुकुल कांगडी में भेज दिया था। पूज्य पिताजी की यही इच्छा थी।

सत्यवती का विवाह जात-पांत तोड़कर :

सत्यकाम से छोटी लड़की सत्यवती थी। वह जब विवाह योग्य हुई, तो मैंने मन में सोच लिया था कि वर ऐसा ढूँढूंगी जो विद्वान और सदा-

चारी हो। उसे दहेज का लालच भी न हो। उस समय गांधीजी ने कपड़ों का बहिष्कार शुरू कर दिया था। मैंने भी घर में कोई विदेशी कपड़ा न लाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। मैंने यह भी निश्चय किया था कि जात-पांत के बन्धन तोड़कर विवाह सम्बन्ध किया जाये। यह बात संबंधियों को मालूम हुई कि जाति तोड़कर वर ढूँढा है तो वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने मेरी लड़की को भी मेरे विरुद्ध सिखाया। विवाह में दहेज सारा खद्दर का ही बनाया गया था। खद्दर पर गोटा और सलमा सजाया गया था। देखने वालों ने इस खद्दर के दहेज को बहुत पसन्द किया। उन दिनों अच्छा खद्दर बहुत कम मिलता था। दहेज के लिए खद्दर जोड़ने में बड़ी परेशानियां उठानी पड़ीं। लेकिन मैंने इस प्रण को निभाया ही।

महात्मा गांधी के प्रभाव में :

बाद में कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने की यह पहली सीढ़ी थीं। महात्मा गांधी ने जब अफ्रीका में सत्याग्रह अन्दोलन चलाया तब उसके समाचारों से मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। अफ्रीका से विजयी होकर गांधीजी जब स्वदेश आए थे, तब उन्होंने यह घोषणा की थी कि विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करो और घर-घर से विदेशी कपड़ों को इकट्ठा करके उन्हें जला डालो। इस क्रांतिकारी घोषणा ने देशवासियों के हृदय में जोश भर दिया था। सब कांग्रेसी स्वयंसेवक घर घर से विदेशी कपड़ों इकट्ठा करते और गधे पर लाद कर किसी मैदान में ले जाकर वहां ढेर लगाते और उसको जला देते। विदेशी कपड़े लेने के लिए हमारे घर पर भी लोग आये। उस समय मेरी लड़की सत्यवती १३ वर्ष की थी। उसने घर में जो कुछ विदेशी बचा-खुचा कपड़ा गर्म रेशमी सूती सब प्रकार का निकाल कर दे दिया। मेरे मन में कुछ कमजोरी भी आयी। मैंने कहा कीमती कोरे रेशमी कपड़े जलाओ मत, किसी गरीब को दे दो। मगर सत्यवती ने कहा–"जो गंदी

बस्तु है, हम वह किसी गरीब को भी क्यों दें।" यह कहकर उसने घर भर के रेशमी-ऊनी विदेशी कपड़े होली करने को दे दिये।

दिल्ली में जुलूस पर लाठी - प्रहार : सत्यवती की गिरफ्तारी

राजनीति में महात्मा गांधी के आने पर सत्याग्रह और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन चला। इन आन्दोलनों में पुरुषों से अधिक महिलाओं ने भाग लिया। लोगों से स्वदेशी के प्रयोग की प्रतिज्ञा लेने के लिये स्वयंसेविका दल बनाये गये। स्वदेशी के फार्म छपाये गये, तय हुआ कि गली गली जाकर बहनों से इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कराये जायें कि-"आज से मैं विदेशी कपड़ा नहीं पहनूंगी।"

मैंने भी उस काम में पूरी लगन से भाग लिया। मैं उन दिनों दिल्ली में थी। विदेशी कपड़ों पर हमने धरना शुरू कर दिया। उन दिनों पं जवाहरलाल जी की सास श्रीमती राजपति कौर भी हमारे साथ काम करती थीं। विदेशी वस्त्र बहिष्कार करने में उनका बड़ा भारी हाथ था। दुकानों में जाकर धरना देना, परिवारों में जाकर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करना यही हम सबका मुख्य कार्य था।

लाठियों की लपेट में :

नमक कानून भंग करने के अपराध में जब गांधीजी गिरफ्तार हुए तो दिल्ली में भारी जुलूस निकला। हड़ताल भी हुई। कचहरी बन्द कराने के लिए जुलूस कचहरी की ओर पहुंचा। जुलूस में पुरुषों से अधिक स्त्रियों की संख्या थी। जुलूस सारे शहर में हड़ताल कराता हुआ दोपहर के ९ बजे के करीब कश्मीरी गेट की कचहरी में हड़ताल कराने के लिए पहुंचा। उस समय मेरी लड़की सत्यवती डिक्टेटर बनायी गई थी। निश्चय हुआ कि दो लड़कियों को डिप्टी कमिश्नर के पास कचहरियां बन्द कराने के लिए भेजा जाये। बाकी जुलूस अहाते में ठहरा रहे। कमिश्नर ने कहलाया कि मैं अपनी कोठी पर जाकर अभी आज्ञा पत्र

भेजता हूँ। उस समय शायद पूल साहब कमिश्नर थे। इस बीच हम लोगों के बीच कुछ बहनों ने राष्ट्रीय गीत गाने आरम्भ कर दिये और पुरुष नारे लगाने लगे :

भारत माता की जय : विदेशी कपड़ों को त्याग दो

हमने देखा पुलिस कोतवाल वगैरह दस-बारह सिपाही वर्दी पहने हुये वहां आ गये हैं।

पुलिस इंस्पेक्टर ने पूछा–'इस जुलूस का जिम्मेदर कौन है ?'

उस समय सत्यवती डिक्टेटर थी। उसने कहा–"मैं हूं। इंस्पेक्टर ने कहा–जुलूस को बरखास्त करो। इस बीच दूसरी ओर कचहरी के बाहर के दरवाजे पर पुरुष वालंटियर और स्त्री वालंटियरों पर लाठियां बरसनी शुरू हो गयीं। एक लड़के की बांह पर लाठी की चोट से सूजन आ गई। एक की टांग पर लाठी पड़ी। मेरे एक तरफ मेरी १२ साल की लड़की कौशल्या और दूसरी तरफ भाई इन्द्र की लड़की पद्मा थी। मैंने दोनों के हाथ पकड़े हुए थे। जुलूस धीरे-धीरे बाहर की ओर बढ़ा। जब हम लोग बाहर निकले तो देखा कि जख्मी हुए लोंगों की बहुत बड़ी संख्या है। किसी के सिर से, तो, किसी की बांह से खून निकल रहा है। देखते - देखते १४४ धारा लग गयी। शहर में तहलका मच गया। स्वयंसेवकों ने तय किया कि अब १४४ तोड़नी चाहिये। उन दिनों कांग्रेस का कार्यालय चांदनी चौक में ही था, वहीं ये निश्चय हो रहे थे।

पहले दिन पांच बहनों ने लाल साड़ियां पहनकर जुलूस का आयोजन किया। पहले दिन के जुलूस में मैं और पंडित जवाहरलालजी की सास श्रीमती राजपति कौर भी शामिल हुईं।

जुलूस पटड़ी पर चलते हुए कंपनी बाग में पहुँचा और वापस कांग्रेस कार्यालय में आ गया। उस दिन कोई घटना नहीं हुई और हम लोगों

का हौसला बढ़ गया। तब दूसरे दिन एक मीटिंग घंटा घर के चारों ओर बने लोहे की सांकलों के अन्दर हुई। जो लोग वहां थे, उन्हें साफ-साफ यह कह दिया गया था कि जिन्हें गिरफतारी से डर लगता हो, वे अभी उठकर चले जाये।

मीटिंग आरंभ हुई। सत्यवती एक छोटी चौकी पर खड़ी हो गयीं। लड़कियों ने जो बारह वर्ष से सोलह वर्ष तक थीं-चारो ओर घेरा डाल दिया। और नारा लगाया कि "हम मशीनगन के मुंह में जाने को तैयार है।"

आध घन्टे बाद वहां हथियारों से लैस घुड़सवार पुलिस आती दिखायी दी। आगे-आगे पुलिस इंस्पेक्टर था। लड़कियों ने नारों की आवाज और भी बुलन्द कर दी। पुलिस इंस्पेक्टर ने आगे बढ़कर पूछा—"इस मीटिंग का जिम्मेदार कौन है ?" सत्यवती ने 'कहा मैं हूं।' उस समय तो पुलिस चली गयी और मीटिंग समाप्त हो गयी, मगर दूसरे दिन सबेरे ही पांच बजे हमारे घर का दरवाजा किसी ने खटखटाया। मैंने सेवक से कहा : 'देखो सवेरे-सवेरे कौन आया है' ! उसने दरवाजा खोला। पुलिस का थानेदार और दो सिपाही ऊपर आ गये। उस जमाने में अब्दुल वाहिद पंजाबी थानेदार था। उसने कहा : 'सत्यवती का वारंट है'।

सत्यवती बिरला मिल में अपने परिवार के साथ रहती थी। थानेदार के साथ जब हम बिरला मिल पहुंचे तो उसी समय सब मजदूर इकट्ठे हो गये और उन्होंने नारे लगाने शुरू कर दिये। सत्यवती की गिरफ्तारी के समाचार से शहर में हड़ताल का ऐलान करा दिया गया। जुलूस भी निकला। एक गाड़ी पर सत्यवती के साथ मैं और मुख्य काम करनेवाली दो-तीन स्त्रियां बैठीं। उस दिन घंटा घर के नीचे हजारों लोग एकत्रित हुए थे। सत्यवती गाड़ी से उतरकर सीधा जनता की भीड़ में व्याख्यान देने के लिए चली गयी। लोगों में जोश फैल गया। 'भारत माता की जय' से आकाश गूंज उठा।

कोतवाली जाकर हम लोग उतर गये। गाड़ी छोड़ दी गई। कुछ वैधानिक कार्रवाई के बाद सत्यवती को जेल भेज दिया गया। हम लोग भी साथ जेल के दरवाजे तक गये।

शराब सत्याग्रह : जेलयात्रा –

एक बार महात्माजी का संदेश आया कि शराब पर धरना देना चाहिए और यह काम बहनें ही करें। क्योंकि यह काम पवित्र आत्माएं ही कर सकती हैं। इसके लिए स्त्री स्वयंसेविकाओं को इकट्ठा किया गया। जत्थे बनाने शुरू किये गये। कुछ बहनें डर रही थीं कि कहीं किसी शराबी से वास्ता न पड़े।

स्वयंसेविकाएं दुकानों पर जातीं तो दूकानदार अपनी दुकान ही बंद कर देते, इसलिए कोई झगड़ा नहीं हुआ। विशेष कोलाहल न होने से यह काम शीघ्र बन्द ही हो गया। कुछ दिन बाद शराब के ठेकेदार के घर पर धरना देने का निश्चय हुआ। कुछ बहनें साथ देने को तैयार हो गयीं। ठेकेदार के घर पर भी धरना दिया गया। उसके घर से किसी को निकलने या अंदर जाने नहीं देते थे। प्रातः सात बजे से दोपहर बारह बजे तक यह प्रतिबंध रहा। आखिर परेशान हो उसने पुलिस बुला ली। हम १३ स्वयंसेविकाएं दो-दो दरवाजे पर खड़ी होती और उनकी गिरफ्तारी के बाद दूसरी दो खड़ी हो जातीं। आधे घण्टे में १३ स्वयंसेविकाएं गिरफ्तार हो गई थीं।

कुछ दिन दिल्ली जेल में बिताकर अधिकारियों ने महिला जेल में हमें लाहौर भेज दिया। यह भी स्त्रियों की जेल है। मुझे क्लास ए में रखा और सबको सी क्लास में। परन्तु हम लोग सारा दिन मिलते रहते थे।

जब यह जत्था जेल से छूटकर आ गया तो राजपति कौल स्वयं एक जत्था लेकर गयीं। उस समय कांग्रेसी मीटिंग करना और झंडा फहराना नाजायज बन गया था। वह मीटिंग की अध्यक्षा हुई थीं, इसलिए पकड़ी गयीं और बहनें झंडा लेकर जुलूस निकालने में पकड़ी गयीं।

दूसरी जेल यात्रा, जेल में हरिजन सेवा-कार्य

सन् १९३३ या १९३४ में फिर सत्याग्रह चला, मगर धीरे-धीरे कुछ सत्याग्रही विदेशी कपड़े की कोठियों पर धरना देकर भी जेल जा रहे थे। मैं और दो बहनों ने एक व्यापारी की कोठी पर जाकर विदेशी माल बंद करने का सत्याग्रह किया। व्यापारी ने पुलिस बुला ली। हम तीनों गिरफ्तार हो गयीं। सजा हुई ६ महीने कैद। दिल्ली जेल में पांच दिन रखने के बाद लाहौर जेल में ले जाया गया। वहां हमारी और कई बहनें भी थी।

वहां मेरी एक पुरानी साथिन मिली। वह थी लुधियाने की एक सिविलसर्जन की पत्नी बहन तुलसी देवी।

मगर एक दिन पता चला कि गांधीजी ने जेल में हरिजनों के लिए अनशन किया है, तब बेचैनी फैल गयी। हमने अखंड चरखे का प्रोग्राम चलाया। उसके बाद सोचा कि हमें भी छुआछूत छोड़ने का कोई काम करना चाहिए। निश्चय यह हुआ कि एक मेहतरानी के हाथ से परोसवा कर खाना-खिलाया जाये। जेल की एक मेहतरानी को बुलाकर साबुन और साफ कपड़े दे दिये गये। वह स्नान करके आयी। खाना तो पहले ही सब बहनों ने मिलकर बना लिया था। उसके हाथ में रोटियों की थाली दे दी कि वह सबको रोटी परोस दे। सब बहनें बैठ तो गयीं, परंतु बहुत सी बहनों के मुंह पर परेशानी थी। कई बहनों ने ग्रास तोड़-तोड़कर अपनी चटाई के नीचे डाल दिये। बहुत कम ने खाना खाया। जेल में सत्याग्रही बनकर भी उन बहनोंके मन से छुआछूत नहीं मिटी थी।

व्यक्तिगत सत्याग्रह :—

१९४२ में फिर मैं एक बार जेल गयी। गांधीजी का संदेश आया कि व्यक्तिगत सत्याग्रह होना चाहिए। मैंने सत्याग्रह करने का निश्चय

किया। दिल्ली में घंटा घर के पास मैंने अपने देशवासियों को यूरोपीय महायुद्ध में सहायता न करने का प्रचार किया। वहीं जेल की गाड़ी खड़ी थी। उसी समय गिरफ्तारी हो गयी। मुझे तुरन्त जेल भेज दिया गया। अदालत में ले जाने की जरूरत नहीं समझी गयी। दूसरे दिन सबेरे की चाय तथा नाश्ता भी नहीं दिया गया। जब पूछा तो नम्बरदार ही ने बताया कि अभी आपका नाम कैदियों में दर्ज नहीं हुआ। इसलिये राशन नहीं मिला। नाम दर्ज होने के बाद ही आपको खाना और नाश्ता आदि मिलेंगे। मैं भूखी पड़ी रही। तीन दिन यों ही गुजर गये। पीछे जेल ले जाया गया। छः महीने की सजा मिली। लाहौर में उन दिनों श्रीमती अरुणा आसफ़अली आ गई थीं और श्रीमती बेदी भी पहले से वहीं थीं।

छः महीने के बाद जेल से छूटकर दिल्ली आने पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने यह निश्चय किया कि मुझे फिर सत्याग्रह करना है। मुझे जेल जाने में कभी घबराहट नहीं हुई। न कभी मैंने वहां जाकर घर की चिंता ही की। मुझे संतोष था कि मैं अपने देश के लिए एक सिपाही का काम कर रही हूं। यही मेरा कर्तव्य था। अगस्त में फिर सत्याग्रह करके जेल गयी और लाहौर जेल में दाखिल हो गयी।

भारत-छोड़ो आंदोलन में नजरबंद :

अगस्त १९४२ को कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में हुआ। गांधीजी ने भारत-छोड़ो का नारा लगाया। ८ अगस्त को गांधीजी के साथ और नेता गिरफ्तार कर लिये गये। हमारे घर में तो तूफान मचगया। मेरी लड़की सत्यवती तो उसी समय कांग्रेस दफ्तर चली गई। दो घंटे बाद पुलिस हमारे घर भी आई। सिपाही सत्यवती और मुझ को गिरफ्तार करने आये थे।

घर में सत्यवती के तीन बच्चे थे— एक लड़का और दो लड़कियां। लड़का, जिसका नाम कृष्ण था उस समय लगभग १६ साल का था। कन्या कुसुम और मुन्ना १४ और ८ साल के थे। सत्यवती जब जेल जाती थी, तब उसके पति श्रीबलभद्र विद्यालंकार बच्चों की देखरेख करते थे। पुरुष के लिए बच्चों को सम्भालना और रोजी-रोजगार का धन्धा करना, अनुपम धैर्य का काम था। यदि सत्यवती को ऐसा सहायक और धीरजवान पति न मिला होता तोवह देश की सेवा कदापि नहीं कर सकती थी।

घर आये पुलिसके सिपाहियों से मैंने पूछा"आपने कैसे कष्ट किया?"

थानेदार ने कहा— "आपका वारंट है।"

मैंने उनको बिठाया और कहा कि मैं अपना सामान तैयार कर लूं, तब चलती हूं। बिस्तर, ट्रंक, कपड़े, चरखा,पूनियां सब चीजें ठीक करके मैंने कहा, चलिये। मेरा सामान तो बाद में आया था। खाली मुझे सीधे जेल ले जाया गया। यहां मुकदमे का सवाल ही नहीं था। यह तो नजरबन्दी थी। वहां जाकर मैंने देखा कि दिल्ली कांग्रेस के प्रधान और मन्त्री मुझ से पहले ही आये बैठे थे। शाम को एक और बहन आ गयीं। इसी प्रकार धीरे-धीरे कुछ बहनें इकट्ठी हो गयीं। अब शहर में जो-जो हुआ, उसका हमें कुछ पता नहीं लगता था।

एक बहन के कान में दर्द हुआ तो कम्पाउन्डर दवाई डालने आया। मैंने धीरे से पूछा—"शहर की क्या हालत है?"उसने उस बहन के कान में दवाई डालते हुए धीरे से कहा कि "पीली कोठी जला दी गयी।"

एक दिन बारह बजे के बाद दरोगा कहने आया कि सब बहनें तैयार हो जायें। सबका लाहौर का तबादला हो गया है। अभी सब सामान बांध लीजिए। मगर उस समयसब के जो कपड़े सुखाने के लिए डाले गये थे,गीले थे। क्योंकि अभी उन्हें स्नान के बाद धोकर सुखाने डाला था। हमने

कहा-कपड़े सूख लेने दो। परन्तु उसने दो कैदियों को बुलाकर सब गीले कपड़े पटसन की बोरियों में भरवाकर रख दिये। बुरा तो लगा, परन्तु लाचारी थी। हम लाहौर पहुंच गये।

लाहौर जेल में जाकर जब बोरियों में से कपड़े निकाले तो देखा, वे सब कपड़े खराब हो गये थे। उन्हें देखने को भी जी नहीं चाहता था। मगर उन्हें ही पहनना पड़ा। भोजन भी अच्छा नहीं मिला। मेरा स्वास्थ्य तो पहले ही खराब था, पेट में दर्द रहने लगा।

जेल में मालूम हुआ कि पुरुषों को जेल में चारपाइयां नहीं मिलीं। यह सुनकर सब बहनों ने सलाह की कि हम भी तब तक चारपाई नहीं लेंगे जब तक पुरुषों को चारपाइयां नहीं मिलतीं। उन दिनों गरमी बहुत पड़ रही थी। सब बहनें शाम को आंगन में पानी छिड़क लेतीं और चटाइयां बिछाकर सो जातीं। नींद तो बहुत रात बीतने पर थोड़ी ही आती थी। लेटने पर ऐसा मालूम होता कि जैसे नीचे गरम पानी की बोतल रखी हो। इसी तरह हमारे दिन कटते थे। लाहौर जेल में उन दिनों मेरे साथ कुसुम (सत्यवती की लड़की) और मेरी लड़की कौशल्या भी थी।

पन्द्रह दिनों के पश्चात् सत्यवती भी दिल्ली से गिरफ्तार होकर लाहौर जेल में आ गई। जेल में खूब भीड़ हो गयी। इस बार जेलर का व्यवहार पहले जैसा शिष्ट नहीं था। पहले जेल गये थे, तो सुपरिंटेंडेंट अपनी टोपी उतारकर बड़ी नम्रता से बात करता था। अब वैसा व्यवहार नहीं रहा। एक दिन उसने लेडी दारोगा से कहला भेजा कि सब कैदिनें अपना अपना कार्ड लेकर कतार में खड़ी हो जायें। कार्ड लकड़ी का होता था उसमें कैदी का नाम व सजा सब लिखी होती थी। हमने कहा कि हम इस तरह कतार में खड़ी नहीं होंगी। उसने कहा आप जब बरामदे में बैठें तो दीवार के साथ तख्ती को खड़ा कर दिया कीजिए। मैंने कहा

जसे आपके कानून हैं' वैसे ही हमारे भी नियम हैं। आप अपने कानूनों पर चलिये, हम अपने नियम पालेंगी। हम भी अपने नियम तोड़ नहीं सकतीं। हम कोई चोरी या डाका या हत्या करके यहां नहीं आयीं,जो जेल के ऐसे कानून मानें। लेडी दारोगा ने समझाया- "ऐसा करने से आपको किसी दूसरी जेल भेज दिया जायेगा। जहां आपको बहुत कष्ट सहना पड़ेगा।" मैंने कहा–"हम लोग आराम करने जेल में नहीं आयीं। आप जैसा चाहें कीजिये,हमें जैसा उचित लगेगा करेंगी। सब बहनों की ओर से मुझे ही बात करनी होती थी। सबने यही तय किया था।

जेल में सत्याग्रह :

निश्चय हुआ कि ९ सितंबर को 'भारत छोड़ो' का दिन मनाया जाय। तैयारी होने लगी। सबने मिलकर फैसला किया कि उस दिन जेल पर तिरंगा झण्डा फहराया जाये। प्रोग्राम बना कि प्रातः चार बजे ड्योढ़ी पर झण्डा लगायें और प्रार्थना के बाद सत्याग्रह करें। सत्याग्रह का कारण यह मांग थी कि हमें लिखने का सामान मिलना चाहिये। दूसरे दिन सुबह चार बजे ही एक बहन के हाथ में झंडा दे दिया गया। उसने चारपाई खड़ी करके, ड्योढ़ी के ऊपर चढ़कर वहां झंडा लगा दिया। जेंल के दरवाजे पर तिरंगा फहराने लगा। पास ही सब बहनें चटाई बिछाकर बैठ गयीं। हम लोग बाहर के कमरे में थे। लगभग बीस स्त्रियां अन्दर बैठक में थीं। उनके और हमारे बीच में लोहे का फाटक था, जो लोहे की सलाखोंवाला था और जिसमें बड़ा-सा ताला पड़ा हुआ था। हमने चटाइयों पर बैठकर पहले प्रार्थना की'फिर नारे लगाने शुरू किये, 'भारत माता की जय' 'महात्मागांधी की जय' -'देश पर मर मिटनेवालों की जय' आदि आदि।

इन आवाजों को सुनकर लेडी सुपरिंटेंडेंट को फोन किया गया और वह आ गयी। इससे पहले जब लेडी सुपरिन्टेंडेंट अन्दर आयी

तो उसने जमादारनी को, जो हमारे पास खड़ी थी गुस्से से कहा "तूने इनको रोका क्यों नहीं ? यह कहते हुए उसने उसके मुंह पर दो थप्पड़ बड़े जोर से जड़ दिये। वह रोने लग गई।

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आकर सबको अन्दर बैरकों में जाने का हुक्म दिया। हमने उसका हुक्म न माना। वह आधे घण्टे के बाद एक मजिस्ट्रेट को साथ में लेकर वहां आ गयी। थोड़ी देर में पंद्रह जवान हाथों में डंडे लिए हुए अन्दर चले आये। उनके बाद कुछ कैदिनें लायी गयीं और उनसे कहा गया कि इन कांग्रेसी औरतों को उठा-उठा कर जेल की कोठरियों में बंद कर दो। फिर क्या था। एक-एक सत्याग्रही औरत को तीन-तीन कैदिनें मिलजुल कर उठाने लगीं। जब अन्दर की बैरक की सब स्त्रियां ले जाई गयीं तो फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट ने हमसे कहा कि आप लोग भी अपने कमरों में चली जाइये।

हमने भी स्वयं जाने से इन्कार कर दिया तो हमें भी उठा-उठा कर ले जाया गया। उसमें मेरी लड़की सत्यवती, कौशंल्या और चौदह वर्ष की दोहती कुंसुम भी थी।

सबसे अंत में मुझे उठाया गया और कोठरी में डालकर ताला बंद कर दिया गया। मुझे तो लेटते ही शरीर में इतना दर्द उठा कि जैसे मेरी सारी हड्डियां टूट रही हों। बाकी सब स्त्रियां बीमार हो गयीं। कुछ के सिर के पीछे के बाल टूटने से फुंसियां हो गयीं। कुछ को बुखार चढ़ गया।

तीसरे दिन शाम को जब थोड़ा-थोड़ा अंधेरा हो गया था, तो सुपरिंटेंडेंट मेरी कोठरी में आया। मुझे कहने लगा-"आप मेरे साथ चलिये। अपनी बेटियों को और अपनी बहनों को देख आइये। उनको कुछ तसल्ली हो जायेगी। मैं साथ चल पड़ी। मेरी लड़कियों को

१०२ का बुखार हो रहा था। मैं सब बहनों से उनकी खबर पूछती जाती थी। मेरी आंखों में आंसू आ रहे थे।

अम्बाले तबादला, राजकुमारी अमृतकौर से भेंट :

चौथे दिन मुझे दफ्तर में बुलाया गया और कहा गया कि आपका तबादले का हुक्म आया है — अम्बाले छावनी की जेल में आपको जाना है। कारण यह बताया गया कि राजकुमारी अमृतकौर गिरफ्तार होकर वहां की जेल में अकेली हैं। उनके साथ रहने के लिये तबादला किया गया है। मेरी समझ में आ गया कि यह तो बहाना मात्र है। कारण यह था कि मेरी लड़की सत्यवती को वे इन उपदेशों का अगुवा समझते हैं। इसलिए उसे यहां से टालना चाहते हैं।

जेल के दफ्तर में बुलाकर मुझे अन्दर नहीं जाने दिया गया। मेरा सामान वहीं मंगवा दिया। मेरी तीनों लड़कियां भी वहीं आ गयीं। उनका सामान भी वहीं आ गया। बाहर पुलिस की लारी तैयार खड़ी थी, जिसमें मोटी-मोटी चार पुलिस-औरतें बैठी हुई थीं। उनके हाथों में डंडे थे।

रात को १ बजे के करीब हम अम्बाले पहुंचे। वहां से जेल ले जाया गया। अंदर जाकर राजकुमारी अमृतकौर से भेंट हुई। मैं पहले से ही उनको जानती थी।

वहां रहने के लिए एक-तंबू सहन में लगा दिया गया था। चटाइयों के ऊपर बिस्तर लगा दिये गये। दो-तीन दिन वहां धरती पर नीचे सोने से हम सब बीमार हो गयीं। क्योंकि वहां की जमीन गीली थी। सत्यवती को तो खांसी और बुखार भी हो गये। इस बुखार और खांसी ने तो अन्त में उसके प्राण ही ले लिये।

वहां मैं और सत्यवती एक ही कोठरी में थीं। उसकी ऐसी छत थी कि अंदर कबूतर आ जाते थे। फर्श पर चूहों की बड़ी-बड़ी बिलें थीं, जिसमें

से मोटे-मोटे चूहे रात को निकल कर दौड़ते फिरते थे। राजकुमारी बड़ी परेशान हो गयी। शायद यह पहला ही मौका था कि उनको ऐसे कष्ट उठाने पड़ रहे थे।

कुछ दिनों बाद उनके भाई,जो शायद कहीं जज थे—मुलाकात के लिए आए। उन्हें अन्दर ले आया गया। फिर, पता नहीं क्या बातचीत हुई कि दूसरे ही दिन अमृतकौर जी को जेल से छोड़ दिया गया। अमृत कुमारी जी ईसाई समाज की थीं। इससे पहले वे कभी जेल नही गयीं थीं। वे गांधीजी की अनन्य भक्तिन थी: इसीलिए उन्हें जेल की यातना सहनी पड़ी थी। उनका भाई जज था। शायद इसीलिये उनपर कुछ दया की गयी होगी।

सत्यवती का रोग बढ़ा—अंतिम आहुति :—

सत्यवती की बीमारी बढ़ती गयी। हर वक्त बुखार रहने लगा। खांसी भी बहुत थी। कमजोर इतनी हो गयी कि हड्डियां उभर आयीं। वहां के डाक्टर के इलाज से जब कुछ लाभ नहीं हुआ तो सिविल सर्जन को बुलाया गया। उसने बताया सत्यवती को टी० बी० का शक है। मेरा मन बेचैन हो गया।

सुपरिन्टेंडेंट ने यह भी कहा कि वह हमें लाहौर भेजने की कोशिश कर रहा है। थोड़े दिन बाद सत्यवती को लाहौर भेज दिया गया। लाहौर जेल में सत्यवती को सरकार ने मेयो अस्पताल में दाखिल करा दिया। वहीं उसका इलाज होता रहा। कुछ दिन बाद हम लोग भी लाहौर जेल पहुंच गए।

सत्यवती की बीमारी बढ़ती ही गयी। लाहौर के डाक्टरों ने सलाह दी कि किसी पहाड़ पर ले जाया जाना चाहिए क्योंकि यहां गरमी बहुत बढ़ रही थी। मई का महीना था।

जेल से मुझे और सत्यवती को छोड़ दिया गया और नोटिस दे दिया कि हम लोग दिल्ली नहीं जा सकते और चाहे कहीं भी जाएं।

शिमले में एक टी. बी. अस्पताल है। मैं सत्यवती को लेकर वहीं चली गयी। वहां अपने खर्च से इलाज कराने लग गयी। वहां के चिकित्सक बहुत ही सहानुभूतिशील थे। आठ-नौ महीने तक हम उसी अस्पताल में रहे।

अस्पताल में रहते हुए ही सत्यव्रती की छोटी लड़की' जो कि केवल आठ साल की थी, गुजर गई। यह समाचार सुनकर माता कब चुप रह सकती थी। वह विह्वल हो गयी। वह लड़की मां को इतना प्यार करती थी कि मां के बिना उसे भोजन भी अच्छा नहीं लगता था। मां जब जेल में थी, वह उसकी बाट जोहती रही कि मां कब घर आयेगी और उसे प्यार करेगी। पर मां का आना तो अपने हाथ की बात नहीं थी। वह बेचारी मां-मां करती हुई धीरे-धीरे कमजोर होती गयी। किसी प्रकार का उपदेश, या लालच उसे मां की याद से अलग नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ कि वह मां-मां करती हुई सदा के लिये मां से अलग हो गयी।

सत्यवती भी अपनी लड़की का वियोग न सह सकी। उसका रोग बढ़ता गया और एक दिन उसने भी रोग-शय्या पर ही प्राण छोड़ दिये।

कस्तूरबा-स्मारक में ग्राम शिक्षा कार्यः

इसके बाद मेरी दुनिया भी बदली। देश में भी परिवर्तन आये। सरकार से कांग्रेस का समझौता हो गया था। सब नेता छोड़ दिये गये थे। शिमले में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। देश का बटवारा होने की बड़े जोर-शोर से बात चल रही थी।

श्रीमती गांधी की मृत्यु हो चुकी थी। कस्तूरबा के स्मारक बनाने के लिए रुपया इकट्ठा हो रहा था। प्रोग्राम यह था कि गांव-गांव में शिक्षा का प्रचार हो। उसके लिए महिला स्वयंसेविकाएं हों, जो गांव में रहकर

ग्रामीणों को शिक्षा दें। शिक्षा सब तरह की हो— सफाई रखना, घर की, कपड़ों की, शरीर की। ग्रामीणों को मिलजुल कर गांव स्वच्छ रखने की शिक्षा भी दी जाये। और उन्हें यह भी सिखाया जाय कि देश के लिए उनको क्या करना चाहिए। गांधीजी ने मुझे बुलाया। सब बात समझाकर मुझे दिल्ली प्रांत की व्यवस्थापिका बना दिया।

तभी कस्तूरबा मेमोरियल का काम शुरू होना था। उसके लिए कार्यकर्ताओं का चुनाव हुआ। मेरे साथ कुमारी शकुन्तला, जो शरणार्थिनी के रूप में पंजाब प्रान्त से आयी थीं और श्रीज्योतिप्रकाशजी कार्य के लिए नियत हुए।

१२ सितम्बर १९४६ को हम लोग उस कोठी में आये, जो आश्रम के लिए सेठ रामस्वरूपजी ने दान में दी थी। वह कोठी कुतुबमीनार के नजदीक ही थी। इसी कोठी में हमारा कार्य-केन्द्र बना। महरौली-छोटा-सा कस्बा भी समीप ही था। सड़क पार करके सामने लाड़ोसराय गांव भी था। गांव का चौधरी कांग्रेस का कार्य करनेवाला था। ब्रजकशनजी चांदीवाले ने चौधरी से मेरा और शकुन्तला का परिचय कराया और सहायता के लिए भी कहा। मैं प्रतिदिन शकुन्तलाजी को लेकर गांव में एक बार चक्कर लगाती। नित्य ही कुछ घरों में जाकर बच्चों को कैम्प में भेजने के लिए उत्साहित करती। धीरे-धीरे काफी बच्चे आने लगे। इनमें लड़कियां अधिक थीं। क्योंकि लड़कों के लिए तो एक छोटा स्कूल गांव में था। परन्तु लड़कियों के पढ़ने का कोई प्रबन्ध नहीं था। सारा दिन लड़कियां बच्चों को खिलातीं या इधर-उधर घूमती थीं। वे कपड़े भी बहुत गन्दे और भद्दे तरीके से पहनतीं। हम चाहती थीं कि वे खाने – पहनने के अच्छी तरीके सीखें। उनका रहन-सहन अच्छा बनें। आश्रम का हमारा यह प्रोग्राम था कि प्रातः उठकर प्रार्थना करके गीता पाठ करते थे। फिर सब अपने -अपने काम में लग जाते। अपने सब काम – कपड़े धोना, खाना बनाना, बर्तन साफ करना—— हम

अपने आप करते थे। आश्रम में नौकर रखने का नियम नहीं रखा गया था। गांव से बच्चों को बुलाकर हम उन्हें पहले नहलाते, उनके कपड़ों को साबुन से साफ करते थे।

साबुन, तौलिया और कपड़े आश्रम में ही रखे हुए थे। धीरे-धीरे उन्हें आश्रम में हमारे साथ रहने की आदत पड़ने लगी। कपड़े भी वे साफ रखने लगे। लड़कियों को हमने कपड़े सीना और बुनना सिखाना आरम्भ किया। हम उनके पहनने के कपड़े, सलवार कुर्ता आदि, उनसे ही सिलवाकर उनको ही पहनने को दे देते थे। कपड़े प्रायः खादी हीके सिलवाते थे। गांव से जो लड़के और लड़कियां आश्रम में आते थे, उनसे सफाई आदि करवाने के पश्चात् उन्हें लिखाई-पढ़ाईमें लगाया जाता था। पढ़ाई हिन्दी में ही होती थी।

कुछ चरखे भी हमने आश्रम में रख लिए। लड़कियां कातना भी सीखती थीं। जब बच्चे कपड़े आदि पहनकर तैयार हो जाते तो पहले एक भजन उनसे गवाते, जो ईश्वर प्रार्थना का होता था। सब बच्चे लाइन लगाकर खड़े हो जाते थे। प्रार्थना के पश्चात ही सब काम शुरू होता था।

श्रीमती कस्तूरबा का देहांत फरवरी में शायद २२ तारीख को हुआ था। हमने वह दिन अच्छी तरह से मनाने का निश्चय किया। उसकी तैयारी करनी शुरू की। लड़कियों को राष्ट्रीय गाना सिखाया।

धीरे-धीरे हम लोग गांव में ऐसे हिल-मिल गये, जैसे सब एक ही परिवार के हों। उन लोगों के दुःख-दर्द में भी हम साथ देते थे। किसी के बीमार होने पर उसके घर जाकर मैं माँ-बाप को तसल्ली देती और दवा आदि का प्रबन्ध करती।

धीरे धीरे लड़कियों को अक्षराभ्यास कराना भी शुरू कर दिया। मैंने देखा कि कोई-कोई लड़की तो बहुत जल्दी लिखना-पढ़ना सीख जाती थी। कुछ ने सुन्दर आलेखन भी शुरू कर दिया। पढ़ाई के साथ हम उन्हें अच्छी कहानियां भी सुनाते और गणित आदि भी सिखाते।

गांव में जो जवान लड़कियां और बहुएँ थीं, उनको भी हमने समझाया कि दिन में काम से फुर्सत मिलने पर आश्रम में आकर पढ़ना, सीना और कातना सीखा करो। धीरे-धीरे दोपहर को दो घंटे के लिए कुछ स्त्रियां आश्रम में आने लगीं—वह सब वहां मिलकर बैठतीं और बड़ी खुश होतीं।

कभी-कभी मैं और शकुंतलाजी आसपास के दूसरे गांवों में भी जातीं। उनके त्यौहारों पर वह हमें बुलाते और हम वहां जाकर खादी का प्रचार करते, उन्हें स्वच्छ रहने के लाभ बताते। कभी-कभी उन्हें मैं भजन भी सुनाती थी।

देश-विभाजन का प्रभाव

पाकिस्तान के बंटवारे के बाद जो भयंकर खबरें फैलनी शुरू हुईं उनसे हमारे पास के गांवों में बड़ी खलबली मच गई। नित्य ही हम कत्ल और दंगों की बुरी खबरें सुनते। गांव में भी हिन्दू-मुसलमानों में तनाव बढ़ने लगे। शकुंतलाजी तो दिल्ली में अपने माता-पिता के पास रह गयीं और ज्योतिप्रकाशजी भी अपने परिवार को लेकर चले गये। मैं उस आश्रम में अकेली रह गयी। गांववाले कहने लगे कि आश्रम बंद करके आप भी चली जाइये- "मैंने कहा! देश हमारा है, भला जाऊँ कहां? जीना-मरना तो अपने देश में ही है, मौत के भय से तो मैं भागती नहीं।"

उन दिनों बापूजी भी दिल्ली आकर हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे। मैंने सोचा कि बापूजी से पूछकर आऊँ कि अब मुझे क्या करना चाहिए!

बापूजी से मिलने गयी और उनसे पूछा कि गांववाले आश्रम बंद करने को कह रहे हैं। उन्होंने पूछा कि क्या तुम्हें भी डर लगता है? मैं तो डर नहीं रही थी, इसलिए कहा कि मैं तो नहीं डरती। तब बापू बोले- "तुम उसी आश्रम में रहो, यही कर्तव्य है।"

मैं आश्रम में वापस आ गयी। आश्रम का माली भी चारों ओर

से रक्तपात और लूटपाट के समाचारों से घबराकर चला गया था। मुझे अकेले ही रहना पड़ा वहां।

एक दिन ऐसा हुआ कि मेरे पास खाने को कुछ नहीं था। मैं आश्रम खुला छोड़कर वहां से जा भी नहीं सकती थी। बड़ा फाटक टूटा हुआ था। इसलिए आश्रम बंद भी नहीं किया जा सकता था।

मैं ऐसी असुरक्षा होने पर भी वहां अकेली रही। मुझे कभी डर नहीं लगा। मेरा ईश्वर पर दृढ़ विश्वास है। मैं मानती हूं जो कुछ भगवान करेगा, वही होगा।

कुछ दिन बाद गांव में दंगा जोर पकड़ गया। भड़के हुए जाटो ने मुसलमानों को मारना शुरू कर दिया।

सरकार ने उनकीसुरक्षा के लिए यह प्रबंध कर दिया कि उन्हें पुलिस की हिफाजत में वहां से ले जाकर हुमायूं के मकबरे में रखा जाये

कुछ दिन बाद वहां एक आश्रम भी खुल गया जो पाकिस्तान से आयी हुई स्त्रियों की देखरेख के लिये था।

गांवों में मुझे एक बात बहुत खटकी। गांव में पंचायतघर तो होता ही था। गांव में कोई समस्या खड़ी हुई तो पंचयातघर में ही उसका फैसला होता था। किन्तु मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि ऐसे स्थान पर स्त्रियों के जाने पर रोक थी। मैंने गांववालों को समझाया। वे माने तो मगर अपनी सैकड़ों सालों की प्रथा को तोड़ने का साहस उन में नहीं था। एक दिन मुझे बापूजी ने बुलाया। उन दिनों वे दिल्ली आये हुए थे। मैं उनसे मिलने हरिजन कालोनी प्रायःजाती रहती थी। उन्होंने कहा कि अब कुछ स्त्रियां ग्रामसेविका की ट्रेनिंग के लिए सेवाआश्रम भेजनी चाहिए, ताकि और गांवों में भी शिक्षा का प्रचार हो। शंकुतलाजी ने बहुत यत्न किया तो एक गांव की स्त्री तैयार हो गयी। उसे सेवा ग्राम भेजा परन्तु वह पंद्रह दिन बाद ही वापस आ गयी। उसने बताया कि

और सब काम तो करना कुछ बुरा नहीं लगता, पर गंदगी उठाने का काम उससे नहीं हो सकता। बहुत समझाने पर भी वह नहीं मानी।

इसी तरह एक बहन मेरे पास आयीं और उसने कहा कि वह देश सेवा करना चाहती हैं। वह बड़ी सभ्य और पढ़ी लिखी थीं।

मैंने उनको ग्रामसेविका की ट्रेनिग लेने के लिए कहा और सब बातें समझा दीं। जो कुछ काम वहां करना पड़ता था वह सब बता दिया

शंकुतलाजी सब बहनों को लेकर स्वयं सेवाग्राम छोड़ने गयीं। तीनों ने तीन महीने की पूरी ट्रेनिंग ली और वहां से खुशी-खुशी लौटीं।

मैंने एक बार गांवों में जाकर लोगों के सामने यह सुझाव रखा कि गांव के लोग एक गड्ढा खोद कर वहीं सब कूड़ा-कचरा डालें तो बड़ा लाभ होगा। खाद भी बनेगी और गांवों में गन्दगी भी नहीं फैलेगी। वे मान तो गये, मगर गांव का कोई आदमी अपनी जमीन पर गड्ढा खोदने देने को तैयार नहीं हुआ। मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि यह लोग अपना फायदा भी नहीं सोच सकते। हर आदमी यही सोचता रहा कि मैं अपनी जमीन दूसरों के फायदे के लिये क्यों रोकूं तो पहल करने को, त्याग करने को, कोई भी तैयार नहीं होगा।

एक दिन मैं गांवोंमें शरणार्थी मुस्लिम औरतो की सहायता के लिये भिक्षा मांगने गयी। पहले तो कोई दान देने को आगे नहीं आया, मगर जब एक ने १० रुपये दिए तो रुपया इकट्ठा होने लगा। गांव में कुछ ऐसे लोग भी थे जो यह सन्देह करते थे कि उनके दान का रुपया वहां तक पहुंच भी सकेगा कि नहीं, जिसके लिये वे दान देते हैं। सब यही चाहते थे कि रुपया महात्मा गांधी के पास जाये। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि आपका रुपया महात्मा गांधी के हाथ में ही दूंगी। सबने मिलकर गांव से १०० रुपये इकट्ठा किये। मुझे इतनी भी आशा नहीं थी। उनकी उदारता देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत बहुत धन्यवाद के साथ मैंने रुपया लेकर बापूजी को दे दिया।

उन दिनों बापूजी दिल्ली आये हुए थे और बिरला भवन में ठहरे हुए थे। उनके साथ और भी बहुत लोग वहां थे। बापूजी अनशन कर रहे थे। वे चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमानों में एकता हो। पाकिस्तान बनने से जो हत्याकांड हुए थे, स्त्रियों की जो बेइज्जती हुई थी, इसी से इधर हिन्दू बहुत क्षुब्ध थे और उधर मुसलमान बहुत भड़के हुए थे। बापूजी दोनों को शान्त करने का यत्न करते। मगर खून-खराबी बढ़ती ही जाती थी। तभी बापूजी ने अनशन किया था। जिस दिन मैं उनसे मिलने गई, उनका अनशन समाप्त हो गया था। मेरे साथ मेरी छोटी लड़की स्वर्णलता और मेरी दोहती कुसुम भी थी। जब हम लोग बिरला भवन गये, काफी भीड़ लगी हुई थी। मैं जाकर अंदर के कमरे में बैठ गई। बापूजी के पास बहुत लोग आया-जाया करते थे। उस समय मुलाकातें कराने के लिए श्री ब्रजकृष्णजी चांदीवालों की ड्यूटी थी। उन्होंने जाकर बापूजी को मेरे आने की सूचना दे दी। काफी प्रतीक्षा के बाद मेरी बारी आई। मैं और मेरी दोनों लड़कियां बापूजी से मिलने उनके कमरे में गईं। बापूजी हमें देखकर हंस पड़े और मेरी लड़की स्वर्णलता की तरफ देखकर कहने लगे कि यह वही लड़की है, जिसने मेरे हस्ताक्षर लिए थे और ५ रुपये स्टेशन पर देने आई थी। मुझे बापूजी की स्मरण-शक्ति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। यह बात आठ वर्ष पहले की थी। फिर वह कुसुम से बात करने लगे। वह कुरुक्षेत्र कैंप से आई थी। उसने सोशल सर्विस की परीक्षा पास की थी। और गुमशुदा लड़कियों को कुरुक्षेत्र में काम करने के लिए लगाने का काम संभाला था। उसने वहां का हाल सुनाया-यह भी बताया कि लड़कियों ने कितना कष्ट उठाकर वहां सेवा-कार्य किया। बापूजी ने विनोद भाव से कहा— "अच्छा तो तुम मुझे यह सुनाने आई हो कि तुमने वहां बहुत काम किया।" हम सब हंस पड़े। बापू भी हँसे। बापूजी की हंसी मैं कभी नहीं भूलती। कैसी बच्चों जैसी भोलीभाली हंसी थी वह। उस हंसी में ही

उस महापुरुष की पवित्र आत्मा के साक्षात दर्शन हो जाते थे।

इतने में वहां डा० सुशीला नायर आ गई। उन्हें देखकर बापूजी कहने लगे–"लो, देखो यह मेरी डाक्टर आ गई। अब मैं इसके अधीन हूं। एक मिनिट भी और बैठ नहीं सकता। बापूजी का स्नान तथा मालिश आदि का समय हो गया था, हम लोग उठ खड़े हुए।

मुझे क्या पता था कि श्री बापूजी का यह अंतिम दर्शन है। अब भी जब उस दिन की याद करती हूं, तो मेरी आंखों में आंसू आ जाते हैं। मैं जब भी उनसे मिलने जाती थी, वे बड़े प्यार से मिलते थे। मैं तो यह अनुभव करती थी– कि मानो उन्होंने प्यार भरा अमृत-प्याला ही उड़ेल दिया हो।

गांधीजी की हत्या का समाचारः—

पाकिस्तान से जो बहनें आई हुई थीं, वे दूसरे आश्रमों में या कैंपों में भेज दी गई थीं। उनमें से एक परिवार हमारे आश्रम में रह गया। जिसमें पति-पत्नी और एक जवान लड़की भी थी। वे एक सभ्य घराने के थे। स्त्री बहुत दुखी रहा करती थी। अपनी बात सुनाते–सुनाते रोने लगती थी। घर में उनके सब सुख-साधन थे। नौकर-चाकरों से भरा-पूरा घर उनका था। वैसे-का-वैसा ही सब छोड़कर लाचारी हालत में उन्हें यहां आना पड़ा था।

उस दिन लड़की की शादी की बातचीत हो रही थी! शादी का प्रबंध हो रहा था। सारा इंतजाम मैंने आश्रम में ही कर दिया था। मुझ से जहां तक हो सका, मैंने उन्हें सब प्रकार का सहयोग दिया। जिस दिन शादी थी, बड़ी अच्छी रौनिक हो गई। गांव के बहुत से भाई-बहन भी इकट्ठे हुए। शादी वैदिक रीति से कराई गई। दिल्ली से भी लोग आये थे। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू भी आयी थीं। संस्कार बड़ी अच्छी तरह हो गया। बैंड बाजे का भी प्रबन्ध हुआ। बर

और कन्या के वस्त्र शुद्ध खादी के बने थे। शादी के थोड़ी देर बाद वर और कन्या को संस्कार की वेदी से उठाकर कमरे में बैठाया गया। इतने में एक लड़का गांव से भागा–भागा आया और कहने लगा–बाजा बंद कर दीजिए। आश्चर्य से मैं उसके मुंह की तरफ देखने लगी। पूछा-क्यों ? उसने कहा-"महात्मा गांधी को किसी ने गोली मार दी। उनका स्वर्गवास हो गया है।" मेरे अन्दर तो जैसे तूफान आ गया। मन ने कहा कि वे मर नहीं सकते। उन्हें कोई मार नहीं सकता। उनका कोई शत्रु नहीं है। मगर जो होना था, वह तो हो चुका था।

मैं श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के पास गई। मेरी आंखों में आंसू थे। जब मैंने उनसे कहा कि गांधीजी को किसी ने गोली मार दी है, तो उन्होंने भी चट कहा कि बापू नहीं मर सकते। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू उसी समय अपनी गाड़ी में सवार होकर चली गयीं।

आश्रम के पास थोड़ी ही दूरी पर एक लाइब्रेरी भी थी और वहां रेडियो रखा हुआ था। वहां से पूरी खबरें आ रही थीं। पांच-पांच मिनिट के बाद समाचार आते थे।

रात हो गयी थी। मैं बिरला भवन तो जा नहीं सकती थी, परंतु सारी रात रोती रही। नींद नहीं आयी। बहुत सबेरे उठकर पहली बस से दिल्ली गयी। बिरला भवन के सामने उतरी तो देखा वहां हजारों की भीड़ जमा थी। पुलिस का पहरा था और लोग लाइन लगाकर खड़े थे। मैं उस लाइन के बीच से होकर सीधी बिरला भवन में चली गयी। मुझे किसी ने रोका नहीं, क्योंकि वहां कुछ लोग ऐसे भी थे, जो मुझे अच्छी तरह पहचानते थे।

जाकर देखा–वह अहिंसा का पुजारी आज किसी पागल की हिंसा का शिकार हो गया था। गांधीजी के शरीर पर खादी की सफेद चादर थी, जिस पर खून के धब्बे पड़े हुए थे। और भी लोग वहां बैठे हुए थे।

मैं भी बापू को प्रणाम करके बैठ गयी। मेरे आंसू थमते नहीं थे। वहां वेद, गीता, कुरान, बाइबिल आदि का पाठ सारी रात से हो रहा था। मैं जब पहुँची, तब सिक्ख लोग ग्रन्थ साहब का पाठ कर रहे थे। सामने के कमरे के दरवाजों पर शीशा लगा हुआ था। सामने से लोग बराबर आ-जा रहे थे। दर्शन करते और प्रणाम करते जाते थे। एक बार जवाहरलालजी भी आये, उनकी आखें लाल हो रही थीं और सूज आयीं थीं।

प्रबन्ध यह था कि जो लोग वहां पहले बैठे होते थे, उन्हें उठा दिया जाता था और दूसरों को बैठने का मौका दिया जाता था। मैं तो वहां से उठी ही नहीं। मुझे किसी ने उठने के लिए कहा भी नहीं। मेरे लिए तो वह समय अनमोल था।

दस बजे बापू के देह को स्नान कराने के लिए ले जाया गया। वहां भीड़ का कोई अन्त नहीं था। बहुत शोर हो रहा था। लोग बापू के अन्तिम दर्शन करना चाहते थे। बापू के देह को स्नान कराके छत पर ले जाकर ऊपर से सब लोगों को दर्शन कराया गया।

बापू फूलों से ढके हुए थे। जिस गाड़ी पर ले जाना था, वह भी खूब फूलों से सजायी गयी थी। एक तरफ वल्लभ भाई और उनके साथी थे। गाड़ी के आगे स्वयंसेविकाएं थीं, भीड़ का तो कोई अंत ही नहीं था। सड़क सुनसान थी, जैसे रो रही हो। एक मुसलमान लड़का सड़क पर खड़ा रो रहा था। मैंने पूछा—क्यों रो रहे हो! कहने लगा— "गांधी मर गया है, अब हमारी रक्षा कौन करेगा!"

बापू सचमुच गरीबों के रक्षक थे। उस दिन सारी दिल्ली में लोगों ने चूल्हा नहीं जलाया। जो लोग जुलूस के साथ नहीं गए, वे घर में रेडियो से सारा हाल सुन रहे थे।

ऐसे महान् पुरुषों की मृत्यु साधारण तरीके से नहीं होती। वह तो जीते हैं संसार के लिए, मरते हैं तो भी संसार के लिए।

जब मेरे भी परमपूज्य पिताश्री स्वामी श्रद्धानन्दजी का बलिदान

हुआ था तो गांधीजी ने कहा था– "मुझे तो भगवान ऐसी मृत्यु दे।" भगवान ने उनकी बात सुन ली। उन्हें भी वैसी ही दिव्य मृत्यु मिली। उनकी छाती और पेट पर भी तीन गोलियों के निशान थे–सचमुच ईश्वर ने उनकी इच्छा पूरी की।

मैं आश्रम लौट आयी।

फरवरी २२ को बा का मृत्यु-दिवस था। हम लोग उस दिन कुछ लंबा प्रोग्राम रखते थे। अखंड चरखा भी चलता था। बाहर से आये हुए लोगों के खाने-पीने का भी प्रबंध होता था। सारे दिन चहल-पहल रहती थी। बापूजी के साथ जो लोग आये हुए थे, वह अभी बिरला भवन में ही ठहरे हुए थे। उनको निमंत्रण भेजा। सब लोग आश्रम में आए। वातावरण ही उदास-सा लग रहा था। गांव से भी स्त्रियां और पुरुष पहुंचे। दिल्ली से आनेवालों में श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, डा० सुशीला नैय्यर और बापू के आश्रम के रहनेवाले लोग थे।

पहले गीता के १८ अध्यायों का पाठ हुआ। उसके बाद श्रीमती रामेश्वरीजी ने भाषण दिया। उन्होंने बताया कि गांधीजी ने श्रीमती कस्तूर बा के स्मारक के रूप में इस गांव में जो आश्रम खोला है, उनका अभिप्राय यह है कि शहरों में तो स्कूल-कालेज और कई प्रकार के विद्यालय हैं, परंतु गावों की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं जाता। न तो पब्लिक ही कुछ करती है और न सरकार ही कुछ करती है। विशेषकर स्त्रियों के लिए तो कोई प्रबंध है ही नहीं। और उन्होंने कहा कि गांवों के लोगों को चाहिए वे कि इस आश्रम की शिक्षा से लाभ उठाएं। अपने बच्चों को यहां भेजें। ताकि वह गंदगी से दूर रहना और साफ रहना सीखें तथा बुरी आदतों को सुधारें। जब श्रीमती रामेश्वरीजी अपना भाषण समाप्त करके बैठ गयीं तो मैंने उठकर सब अतिथियों को धन्यवाद दिया। और यह आश्वासन दिया कि हम लोग अपनी शक्ति के अनुसार गांव के बच्चों को अच्छा बनाने में परिश्रम

करेंगे और कर भी रहे हैं। सभा समाप्त हुई।

सब लोग नई दिल्ली वापस लौट गए। वातावरण उदासीन-सा ही रहा। क्योंकि गांधीजी का स्वर्गवास हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे।

जब भी ऐसा पर्व आता था तो हम लोग १२ घंटे के लिए अखंड चर्खा चलाते थे। जिसमें मेरा अधिक समय कातने में जाता था।

अब जो पाकिस्तान से स्त्रियां और लड़कियां आई थीं, उनके लिए यहां महरौली की धर्मशाला में रहने का प्रबंध सरकारी तौर से हो गया। मैं भी वहां जाकर कुछ सहायता करती थी। जब भी कोई राष्ट्रीय दिवस होता, सब मिलकर चरखा कातते, आपस में प्रेम सहित बातचीत करते। उस मंडली की जो अधिष्ठात्री थी, बड़ी स्नेहवाली थी। गांव में उसने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। सबेरे-सबेरे जाकर दूधवालों से दूध इकट्ठा कर लेती थी। वह अपना कार्य अच्छी तरह से सम्भाल रही थी। अब पाठशाला गांव के पंचायत-घर में लगने लगी थी। कोठी में केवल कर्मचारी लोग ही रहते थे। मेरी आंखों में भी कुछ कष्ट हो गया था। डाक्टर की राय थी कि कुछ दिन आराम करना चाहिए। इसलिए मैं नई दिल्ली आ गयी। कभी-कभी जाकर पाठशाला देख आती थी और लड़कियों को मिल आती। इतने दिन उनके साथ जो संपर्क रहा, इससे उनका प्रेम भी हो गया।

इस संस्था के मुख्य प्रबंधकर्ता ठक्कर बापा बने थे। वे बड़े कर्मशील थे और कठोर भी। काम करने में ढील को वह पसंद नहीं करते थे। जो भी बात उनसे कही जाती थी, बहुत सोच-विचार करके और कई प्रकार के प्रश्न करके निश्चिंत हो जाते, सब उसको मानते थे। उनकी आज्ञा बड़ी दृढ़ हुआ करती थी।

मुझे कई बार उनके साथ गांवों में जाने का मौका मिला। मैंने देखा कि यदि किसी ने अपना काम सुचारु रूप से नहीं किया और

दोष से मुक्त होने के लिए श्री ठक्कर बापा से बहाने बनाने लगा तो वे झट समझ जाते थे। उस समय वह ऐसे मालूम पड़ते थे, जैसे कोई मिलिटरी का अफसर बोल रहा हो। परन्तु नम्र भी बहुत थे वे।

एक बार मुझे उनके साथ पूना जाने का अवसर मिला। वहां कस्तूर बा कमेटी के मेंबरों और प्रतिनिधियों की मीटिंग होनेवाली थी। मैं दिल्ली से ही उनके साथ गयी थी। एक नौकर भी साथ ले गये थे हम। रास्ते में मुझे कोई कष्ट न हो, इसका उन्होंने बहुत ध्यान रखा। कल्याण स्टेशन से पूना के लिए गाड़ी बदली तो वहां हम लोग उतर पड़े। अभी गाड़ी जाने में देर थी, इसलिए वहीं स्टेशन पर ही कुछ खा-पी लेने का विचार किया।

मैंने देखा कि जब बापा ने उस सेवक को भी बड़े प्यार से अपने पास बैठाकर भोजन कराया, उस समय बापा बहुत अच्छे लग रहे थे। मानो पिता ने पुत्र को पास बैठा रखा हो। पूना जाकर जहां सब लोग ठहरे थे, वहां भी जब सब लोग पंक्ति में भोजन करने के लिए बैठते, उस समय भी उस सेवक को वहीं उनके साथ भोजन के लिए हम बैठाते थे।

मीटिंग में ठक्कर बापा के साथ ग्रामसेविकाओं के द्वारा काम करना बहुत कठिन-सा लगता था। हम लोगों ने ठक्कर बापा के साथ पूना की खूब सैर की और जहां श्री बापू और महादेव भाई तथा श्रीमती कस्तूरबा जेल में रहे थे, वह स्थान भी देखा। उस समय मुझे एक पुरानी बात याद आ गई—दिल्ली में गांधीजी और बा आये हुए थे, तब कांग्रेसी महिलाओं ने एक स्त्रियों की मीटिंग करने का निश्चय किया था और बा को प्रधान बनाया। मैं उनके पास ही बैठी थी। जब स्त्रियां बा के चरण छूने को आतीं तो बा उनके हाथ को झटककर दूर कर देतीं।

धीरे-धीरे आश्रम का काम समाप्त हो गया। मैं वापस दिल्ली आ गयी। मेरी आंखों में तकलीफ हो जाने के कारण मैंने भाई श्यामलालजी को प्रार्थना-पत्र भेज दिया कि मैं आश्रम में अब काम नहीं कर सकती।

आश्रम का काम कुमारी शकुंतला बी. ए. को सौंपकर मैं घर आ गयी। कलकत्ते में मेरा छोटा पुत्र चि. सत्यपाल रहता है। वहां आकर मैंने आंखों का आपरेशन करवाया। वह बड़ा सफल रहा।

अब मैं बड़ी अच्छी तरह स्वाध्याय करती हूं— जिससे मुझे बहुत संतोष होता है।

मैं प्रभु से प्रार्थना करती हूं कि जब तक मेरा जीवन रहे, इसी प्रकार स्वाध्याय में लगी रहूँ। और शुद्ध खद्दर ही व्यवहार में लाऊँ। जिस दिन से मैंने खद्दर का प्रण किया है, सब कपड़े-विस्तर और रूमाल तक खद्दर का ही बरतती हूं।

आशा है प्रभु मेरी इच्छा पूर्ण करेंगे।

मेरी लड़की : सत्यवती

स्वतन्त्रता संग्राम में अहिंसात्मक युद्ध करते करते, उसनेप्राण त्याग दिये ।
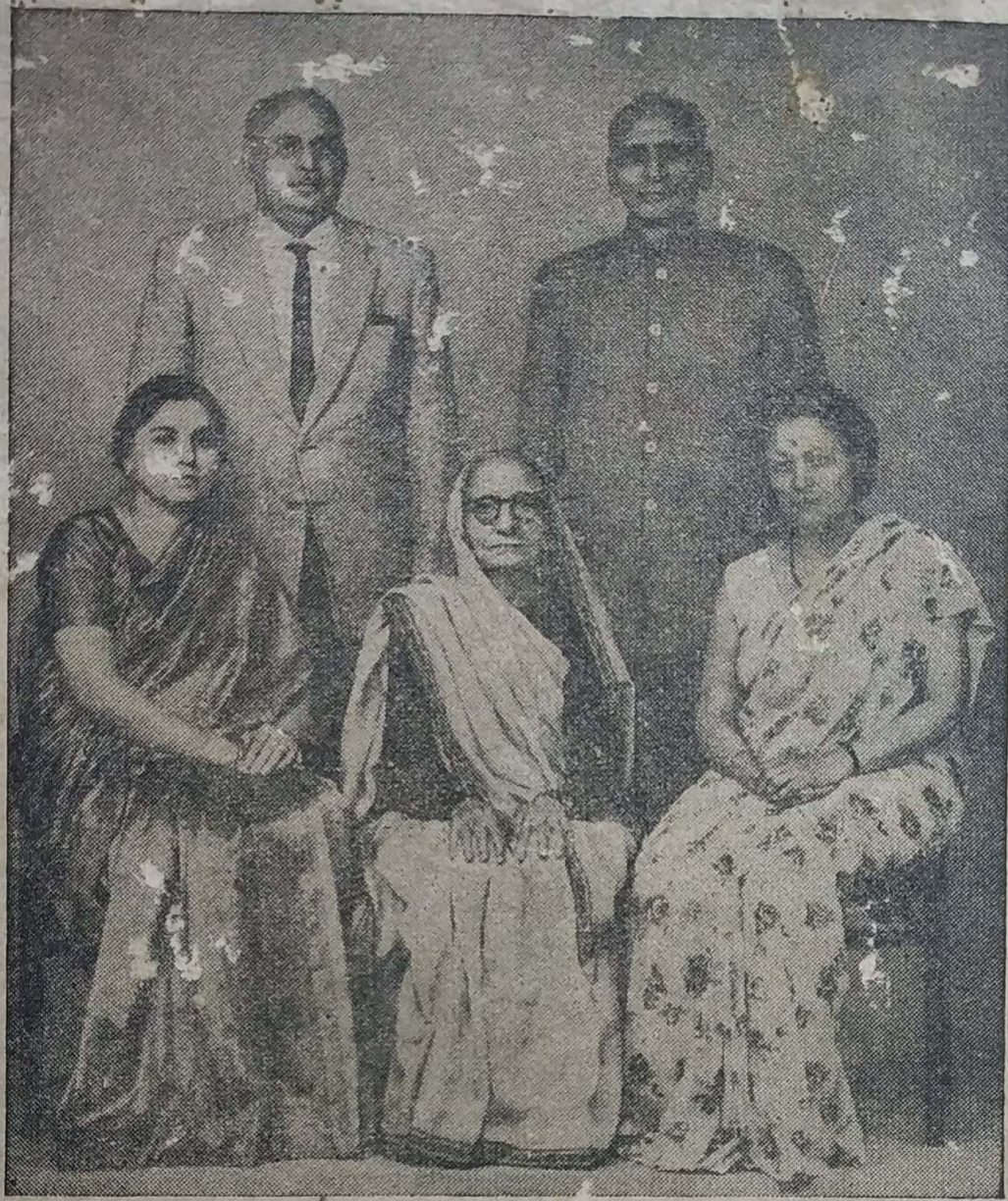
मेरे पुत्र : सत्यकाम, सत्यपाल
पुत्रवधू : सुमित्रादेवी, निर्मल